

ज्ञानप्रभा के इस अंक में भारतवर्ष की आदिवासी जनसंख्या की समस्या पर कुछ लेख दिये गये हैं। ये समस्त लेख अंग्रेजी में हैं। आदिवासियों/वनवासियों की समस्या काफी जटिल है एवं इन लेखों से इस समस्या के समस्त पहलुओं पर प्रकाश नहीं डाला जा सकता। वर्तमान में नक्सलवाद की जो समस्या चल रही है वह वास्तव में आदिवासियों की ही समस्या है। आदिवासियों की समस्या को अनदेखी करने या इसे गलत ढंग से हल करने का प्रयास करने के कारण ही नक्सलवाद की समस्या उत्पन्न हुई है।

आदिवासी जनसंख्या के 2011 की जनगणना के आंकड़े अभी उपलब्ध नहीं हो सके हैं किन्तु 2001 की जनगणना के अनुसार इनकी संख्या लगभग साढ़े आठ करोड़ अर्थात् कुल जनसंख्या का आठ प्रतिशत से अधिक थी। किन्तु जिस भू भाग पर ये रह रहे हैं वह देश के क्षेत्रफल का 15% था। इस संख्या में बढ़ोतरी हुई होगी इसमें कोई सन्देह नहीं है। 2001 में समस्त देश की साक्षरता की दर 65% थी जब कि आदिवासियों में यह दर 48% से भी कम थी। उसमें आदिवासी महिलाओं की साक्षरता दर केवल 35% थी। निश्चय रूप से पिछले 10 वर्षों में इसमें सुधार हुआ होगा। स्वास्थ्य सेवाओं का भी यह हाल है। एक अनुमान के अनुसार देश में उपलब्ध स्वास्थ्य सेवाओं में से केवल 15% ही आदिवासी क्षेत्रों में उपलब्ध हैं।

आर्थिक क्षेत्र में भी आदिवासियों की दशा शोचनीय है। निर्धनता की रेखा से नीचे रहने वाले आदिवासियों की संख्या 50% से भी अधिक है जब कि समस्त देश के लिये यह अनुमान 30% का लगाया गया है। अधिकांश आदिवासी श्रमिक हैं एवं उन्हें भी नियमित रूप से काम नहीं मिलता। सबसे बड़ी बात यह है कि वनों की उपज ही आदिवासियों एवं वनवासियों के जीवन का आधार है एवं इस उपज के उपयोग का अधिकार उनसे छीन लिया गया है। वनों की लकड़ी के ठेके बड़ी कागज मिलों को दे दिये जाते हैं एवं आदिवासी इनका उपयोग नहीं कर पा रहे हैं। यहां तक बांस को लकड़ी घोषित करके उसके उपयोग से वनवासियों को वंचित कर दिया गया है। अब संभवतः इस नियम के बदला जा रहा है। ठेकेदार उनका शोषण करते हैं एवं भ्रष्ट सरकारी कर्मचारी उन्हें अपमानित करके उनसे दुर्व्यवहार करते हैं।

इन समस्याओं से भी बड़ी समस्या आदिवासियों के विस्थापन की है। एक अनुमान के अनुसार 1990 से अब तक लगभग 90 लाख

आदिवासियों को उनके रहने स्थानों से विस्थापित किया जा चुका है। 1980 के पश्चात् 11282 बड़े प्रोजेक्ट लगाये गये एवं इनमें लगभग 18 लाख हेक्टेयर भूमि का उपयोग किया गया। उड़ीसा में आदिवासियों के निवास स्थान की 54-56 प्रतिशत भूमि से उन्हें निष्काषित कर दिया गया एवं इसका कब्जा गैर आदिवासियों को दे दिया गया। बड़े उद्योगों, बिजली घरों, विशाल बांधों इत्यादि के निर्माण के कारण समस्त देश में जितनी जनसंख्या विस्थापित हुई है उसमें 50% से भी अधिक आदिवासी हैं। इन्हें आश्वासन दिया गया था कि विस्थापित किये जाने वाले उद्योगों में उन्हें नौकरियां दी जायेंगी किन्तु ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। वे आज भी भयंकर गरीबी गंदगी एवं बीमारियों के बीच में रह रहे हैं।

माओवादी हिंसा का समर्थन कोई भी प्रबुद्ध नागरिक नहीं करेगा किन्तु इसे केवल शान्ति व्यवस्था की समस्या समझ लेना गलत है। आजादी के 64 वर्षों बाद भी हमारे समाज का यह भाग जिन परिस्थितियों में रह रहा है या उसे रहने के लिये विवश किया गया है उस पर गहन विचार आवश्यक है। इस समस्या को नौकरशाहों एवं सैन्य बलों के भरोसे छोड़ देना उसी भूल को दोहराना है जो स्वतंत्रता के पश्चात् निरंतर की जाती रही है।

(1)

स्वयं सेवी संस्थाएँ भी इस दिशा में महती भूमिका निभा सकती हैं। पूर्वोत्तर भारत तथा मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश इत्यादि में अनेक स्वयंसेवी संस्थाएँ कार्यरत हैं। इनके द्वारा किए गये कार्यों का यद्यपि कभी भी मूल्यांकन नहीं किया जाता है किन्तु यह महत्वपूर्ण है इसमें कोई संदेह नहीं है। इन संस्थाओं ने शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता इत्यादि के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया गया है। अब आवश्यकता इस बात की है कि इस समस्याओं की ओर से सरकार, राजनैतिक दलों एवं नौकरशाहों की सोच को बदलने के लिये भी प्रयत्न किये जायें। मेधा पाटेकर ने विशाल बांधों के विरुद्ध आंदोलन चलाकर एक जनमत तैयार किया है। अन्ना हजारे ने भ्रष्टाचार के विरुद्ध जन जागरण किया है। आदिवासी क्षेत्रों में कार्यरत संस्थाएँ जनसाधारण को आदिवासियों की समस्याओं के प्रति जागरूक करने का महत्वपूर्ण कार्य कर सकती हैं।

ज्ञानप्रभा के इस अंक में कुछ और लेख भी आशा है पाठकों को पसंद आयेंगे। हमारा प्रयत्न रहता है कि भारतीय संस्कृति पर कुछ न कुछ सामग्री, अवश्य दी जाये। भारतीय संस्कृति के सनातन संदेश एवं Tradition vs Modernisation इसी श्रृंखला की कड़ियां हैं। भारत का अन्तर्मन भगवा रंग से रंगा है। सुप्रसिद्ध लेखक हृदय नारायण दीक्षित ने अपनी सशक्त लेखनी से इस तथ्य को बखूबी उभारा है। पाठकगण भी पढ़ते पढ़ते कुछ लिखने की सोचते लगते हैं। पत्रिकाओं में लेख लिखने की कला उनकी इस इच्छा को पूरी करेगा।

Editor's Reflections

Sewa is Incomplete Without Spirituality

God has given us a precious gift, the gift of the faculty of feeling. We respond to the joys and sorrows of others and want to share both. This act of sharing or assistance is Sewa. In doing Sewa there are two stages. One of understanding and feeling and the other doing some work to relieve the suffering or fulfil the need with active concern.

In other words Sewa is a service with affection and without desiring anything in return. It is an act of sharing material, mental and spiritual resources with the needy and the deprived. Water to the thirsty, food to the hungry, shelter to the homeless, education to the ignorant, love and compassion to those experiencing fear and sorrow are some expressions of Sewa.

Sewa is not a random distribution of goods and services in which one party gives and the other receives passively. Sewa is the full participation of both, those who serve and those who are served. It is a process of service that reveals the strengths and needs of all.

Sewa is also an act of self purification. In the beginning Sewa is effortful, intentional and may at times inconvenient and uncomfortable. As the effort progresses a point may come when Sewa becomes natural and fills both heart and mind with spontaneous love and compassion. From that point on, Sewa becomes second nature.

One of the essential elements of sewa is that it should not be done with some ulterior motive. Such Sewa may alienate the beneficiary from his religion, family and community. Sewa should help a poor to integrate deeper into his culture and environment. So the second essential of sewa is that it should be given according to the needs of the person. It should not be based on what we know and feel like doing rather than what needs to be done.

Spirituality-Spirituality is a belief that life is something more than merely material world of proof and beyond what can be measured or counted. Besides the outer life, there is an inner life, a realm of belief and mystery. Spiritual matters are those matters which are related to human kind's ultimate nature and purpose. It is about self-realization, our identification with the cosmic whole and searching the ultimate reality of our existence.

Most of all spirituality is based on the belief that the same divine soul resides in all the living beings. We are abodes of the same God, we need not go anywhere to seek him. All the poor and miserable are not only the abode of God but God themselves. So, we should realize that the service to the poor, the illiterate, the miserable and the affected is the real worship of God. It is the highest spirituality and the highest religion.

(2)

A person with spiritual values does Sewa as an act of worship to God. And one who worships God cannot have a sense of superiority and cannot be arrogant. Social service without inner purity may degenerate into blatant corruption and criminality. But spirituality without social service also degenerates into monasticism, orthodoxy and professional priesthood. Lord Buddha, even after attaining the highest blissful state of Nirvana engaged himself in social actions like protest against priesthood, casteism and cruelty to animals.

So, there is a need to combine the two human traits: Sewa and spirituality. They are complementary to each other just as the body without soul is blind and the soul without body is lame so sewa without spirituality may lead to arrogance and superiority complex and spirituality without Sewa may degenerate into dogmatism.

As we develop spirituality

With the development of a spiritual bent of mind, we begin to experience a sense of awe, a connection to all of life and a deep reverence for the divine. Spirituality calls a human being to a life of trust and service. It involves a reverent attitude towards all things be-

cause it awakens us to the divine presence in all things.

Sewa done with a touch of spirituality will bring the following benefits to the doer.

- Desires and attachments, that cause mental tension, would disappear.
- Sewa will be done with almost humility. It will be an act of worship and will give a sense of inner peace and feeling of calmness.
- Ego will be reduced resulting in the elevation of consciousness that we are nearer to God.
- Universal love would be manifested.
- Abiding mental peace with joy and ecstasy would be achieved.

पूजा और कर्म

प्रत्येक कठिन समय में भगवान तुम मेरे साथ रहते हो, जब-जब भी मनुष्य ने मुझे टुकराया तब-तब तुमने मुझे सहारा दिया, एक मुकाम दिया। लेकिन फिर भी मैं तुम्हारी पूजा नहीं करती। यदि कोई दूसरा होता तो वह तुम्हारा मन्दिर बनवाता और रोज़ तुम्हें पूजता। लेकिन मैं तुम्हारी नित्य-प्रति पूजा तो दूर कभी वार-त्यौहार स्मरण भी नहीं करती। क्या प्रभु तुम्हें इस बात पर गुस्सा नहीं आता? क्या मुझे सज़ा देने का मन नहीं होता?

“नहीं, पूजा में चापलूसी का भाव दृष्टिगत होता है। चापलूसी और कर्म दोनों साथ-साथ नहीं रहते। मेरी पूजा तो श्रेष्ठ कर्म ही है” भगवान ने कहा।

डा. श्रीमती अजित गुप्ता

Holy Wisdom

तत्व ज्ञान

आदि शंकराचार्य उवाच

ईश्वर का सच्चा स्वरूप

- ★ सिर्फ ब्रह्म ही सत्य है, यह संसार मिथ्या है।
- ★ ब्रह्म और जीव एक ही हैं। हमें जो अन्तर दिखता है, उसकी वजह ज्ञान की कमी है।
- ★ ब्रह्म में लीन होने से जीव को मुक्ति मिलती है।
- ★ हमारी आत्मा, परमात्मा का ही अंश है, मगर मोह के कारण उससे साक्षात्कार नहीं हो पाता।
- ★ ज्ञान की मदद से ही आत्मा और परमात्मा के बीच साक्षात्कार संभव हो पाता है।
- ★ ईश्वर का न कोई रंग है, न आकार। वह प्रकाश स्वरूप है।

वर्तमान को स्वीकारो

- ★ अस्तित्व सिर्फ वर्तमान का होता है और जिन्दगी भी सिर्फ वर्तमान में ही होती है।
- ★ वर्तमान यानी अभी के बारे में सोचो। इससे तुम अपनी नकारात्मक सोच के असर से बच सकोगे।
- ★ वर्तमान का सामना करने से ही सूझ-बूझ के साथ हकीकत का सामना किया जा सकता है।
- ★ अपनी नकारात्मक सोच के कारण हम अपने आने वाले समय को लेकर डरने लगते हैं।

नित्यो नित्यानां चेतनच्छेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान्।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा-स्तेषां शान्तिःशाव्वती नेतरेषाम्॥

वह (परमात्मा) नित्यों का नित्य और चेतनों का चेतन है, एक अकाम है वह जो सबकी सभी कामनाओं का विधान करता है। उस परमचेतन सत्ता को जो धीर (विद्वान्) अपने भीतर स्थित देखते हैं उन्हीं को शाश्वत शांति प्राप्त होती है।

Tribal Development in India

- Dr. Tarun Bikash Sukai
Dhurjati Mukharjee

One of the greatest challenges that Independent India face is the proper provision of social justice to the scheduled tribes by ameliorating their socio-economic conditions. The tribal population of India continues to suffer from discrimination, marginalization, extreme poverty and conflict. They are being deprived of adequate access to the basic needs of life such as health, education, housing, food, security, employment, justice and equality. Issues of sustainable livelihood, social and political participation of the tribal exist as major problems in India. Some of them are being dispossessed of their traditional lands as their livelihoods are being undermined. Meanwhile, their belief systems, cultures, languages and ways of life continue to be threatened, sometimes even to the point of extinction. Governments have failed to guarantee tribal people's rights in the implementation level. Members belonging to tribal societies are unable to acquire and use their rights.

India has the largest concentration of tribal people anywhere in the world except perhaps in Africa. The tribals are children of nature and their lifestyle is conditioned by the eco-system. The tribals live mostly in isolated villages or hamlets. A smaller portion of their population has now settled in permanent villages as well as in towns and cities. On the whole, as per rough estimates, the prominent tribal areas constitute about 15 percent of the total geographical area of the country. Scheduled Castes and denotified tribes constitute the weakest section of India's population from the ecological, economic and education angles.

Tribal Population

There are approximately two hundred million tribal people in the entire globe, which constitute, about 4% of the global population. They are found in many regions of the world and majority of them are the poorest amongst poor. There are 533 tribes (with many

overlapping types in more than one State) as per notified Schedule under Article 342 of the Constitution of India in different States and Union Territories of the country with the largest number of 62 being in the State of Orissa. Thus, if the sub-tribes and state tribes are taken into consideration, the number will be many more. About 50% of the tribal population of the country is concentrated in the states of Madhya Pradesh, Chhatisgarh, Jharkhand, Bihar and Orissa. Besides, there is a sizeable tribal population in Maharashtra, Gujarat, Rajasthan and West Bengal. According to 2001 census, the population of Scheduled Tribes in the country was 84.3 million consisting about 8.19% of total Indian population. The population of Scheduled Tribes has been found increasing after 1951. The decadal population growth between Census Year 1981 to 1991 in respect of tribal population has been much more (31.64%) than the same for entire population (23.51%). As compared to the sex ratio for overall population (927 females per 1000 male), the sex ratio among the Scheduled Tribes is more towards females (972 females per thousand males).

(4)

Health Care Facilities in Tribal Societies

The tribal population are less likely to afford and get access to healthcare services when required. The health outcomes among the Scheduled Tribes are very poor even as compared to the Scheduled Castes. Among the scheduled tribes or adivasis of India, mortality, morbidity and malnutrition rates remain particularly high when compared to the Indian population at large. Remoteness of villages, uncooperative attitudes among medical personnel, limited manpower, and a lack of awareness within tribal communities-all pose difficulties in achieving adequate health care delivery.

Economic Scenario of Tribal Society

The poverty levels of India's tribal population have remained persistent over time. Deprived of formal education and with little access to capital, they fail to find work or regular jobs, ending up in casual employment or in agriculture. They constitute a large proportion of agricultural, industrial labourers etc. More than half of the rural tribal population is found to be below poverty line. It has been observed that while poverty among the general population had

declined, there had been little change in poverty levels among the tribal people. The poverty gap between Scheduled Castes and other groups in India has decreased while that between the Scheduled Tribes and other groups has widened.

Tribal Population and the Environment

The 1992 United Nation Conference on Environment and Development identified indigenous peoples as one of the major stakeholders in Agenda 21. Yet the rights of the tribal population regarding the environment and natural resources have frequently been overridden by governments, transnational corporations or multilateral agencies. Their identity is in grave danger, since the forest cover in the country has drastically been reduced causing unnatural damage to the environment and forests, they were living in. **Unfortunately the forests conservation laws did not support them and denied them even a small share from the forests. So they become unnatural intruders to their own home land.** Strategies for pro-poor economic growth that rely on natural resource exploitation often have an adverse impact on tribal communities. They may contribute to their further impoverishment or cause displacement. Development should be meaningful to all potential beneficiaries; yet the rights of tribal people have often been violated in the name of 'development'. The tribal in India are routinely marginalized and deprived of their access to fundamental resources.

It is significant that N.C. Sexena, a member of the National Advisory Council (NAC), came out with startling findings that 85.39 lakh tribals have been displaced since 1990 for mega projects, constituting 56 per cent of India's total displaced population. "Since 1980, 9.8 lakh hectares of forest land have been diverted for 11,282 projects", the note stated, giving the example of Orissa where 54-56 per cent last 25-30 years. If the easy to calculate the extent of displacement of tribals while their poverty and squalor is now a well known fact.

Another estimate found is that of the one lakh families-mostly of tribals-disposed and displaced by bauxite mining operations of just one private sector giant, a mere 400 have received Class IV employment in the enterprise.

Both illiteracy and malnourishment in tribal areas are over 50 to 60 per cent and consumption of foodgrains has fallen by 10 to 15 per cent. "Studies have found that tribal population has showed not much improvement in the food and nutrition intake over time", Sexena pointed out and quite rightly.

In the case of Bellary also, the search for iron ore has led to the forests being stripped and the soil rendered unfit for cultivation. As in Orissa, here also, mining has been carried out because of the close links forged between the world of crime, business and politics.

Some people have argued that mining activities for feeding factories with raw materials would generate jobs and change the lifestyle of the people of the area. But this is erroneous thinking as experience has shown that in most areas where big industrial units have been set up, people continue to live in poverty and squalor. One may mention here the case of Jamshedpur where the city looks posh and beautiful but just a few kilometers away the people languish from poverty, malnutrition and hunger.

(5)

Tribals have long received step-motherly treatment from the state which has pushed them to extremism and the Maoist violence could continue unless there is positive and quick intervention by the government. This is not realized by a section of politicians and bureaucrats who feel violence has to be countered by armed resistance-very much contrary to Mahatma Gandhi's thinking and philosophy. Thus more than reservation for scheduled tribes; what is needed at the juncture is providing social and physical infrastructure in the tribal and backward villages to help improve their quality of life and create employment opportunities for them.

The planning strategy followed in the country is geared to mega projects in urban areas with little concern for the countryside. Moreover whatever projects are there for the rural poor do not reach the real beneficiaries. This has to change with a pronounced pro-tribal, pro-rural, pro-poor outlook. But as things stand today the powerful lobby of the business-politician-bureaucrat nexus may not allow this to happen.

In the present scenario, an action plan needs to be formulated that could be executed at the grass root level. If necessary, the involvement of the civil society organizations, including tribal groups, working in the place would have to be enlisted. Only then will the interventions be fruitful and effective and in the interest of the masses.

Ensuring a better future for Tribal Population

Despite elaborate provisions in the Constitution and other laws, it is an unfortunate reality that social injustice and exploitation of Scheduled Tribes and other weaker sections persist.

Though Government has emphasised on decentralised planning as a means of localising policymaking, bringing decision-making closer to disadvantaged groups; however, several factors have blocked this potential. The social and economic power of local elites has often translated into disproportionate influence over the political process; top-down, insulated and non-transparent decision-making structures have made it difficult for the socially excluded group to raise voices for their rights through involvement in decision-making process. In this context formal decentralisation has to be accompanied by efforts to democratise local government while recognising that on technical as well as political grounds, certain problems must continue to be addressed at higher levels. Here the instruments of governance in the country, and the energetic and committed non-governmental sector and civil society organisations can play a crucial role. Promoting civil society networks will be helpful in mobilising the tribal population for building their alliances with organisations, which are fighting for tribal-rights and social justice by adopting a bottom-up way of strengthening the capacity of the tribal population to exercise their voice and to ensure their claims, as addressed by policies and political processes.

[The 1st author is Assistant Professor, Department Of Social Work, Assam (Central) University, Silchar

The 2nd author is a Kolkata based freelance journalist.]

Problems of Tribal Education in India

- Dr. Sanjay Kumar Pradhan

For the development of a society there is need for equitable and balanced progress of all the sections of human communities and for this perspective, it is imperative to bring the weaker, deprived and discriminated sections such as Scheduled Tribes (STs) in India to the forefront of educational revolution and mainstream of national development. Education imparts knowledge, and knowledge of self identity and human environment will infuse a sense of confidence, courage and ability among the weaker sections of the society to know and overcome their problems associated with exploitation and political opportunities extended to them. Although there is a significant increase in the literacy of population of all categories in India, the tribals are far behind from the national increase. Despite special initiatives on tribal education by the government, since independence, the achievement is not as per expectations and the problem of tribal education is still a matter of concern. Tribal education, being a distinct discipline with different socio-cultural fabrics and hardships, needs to be analyzed to focus on the problems associated with it.

(6)

Profile of Tribal Literacy in India

Since independence there is an increase in the tribal literacy but not as per the national average as will be seen for Table 1.

Table 1: Tribal Literacy in India

Years	All categories			Scheduled Tribes		
	Boys	Girls	Total	Boys	Girls	Total
1961	39.44	12.95	24.04	13.83	3.16	5.53
1991	64.13	39.29	52.21	40.65	18.19	29.6
2001	75.3	53.7	64.8	59.2	34.8	47.1

Problems

Poor economic conditions accompanied by subsistence economy is a great hindrance to successful education of the tribal children. Since their economic condition is poor and the very survival being at stake, the importance of education touches only the periphery of the tribal life. They find it difficult to afford their children to go school, rather, they see children as an economic asset in the family and contributes to the family income by working along with the parents and with others.

Apathy of Parents

Both the tribal and non-tribal teachers find it very difficult to convince the tribal to send their children to school to adopt new ideas as they are more concerned with the present than the future. A large section of tribal parents do not send their children to school to utilise the free education opportunities offered to them. It is practical, utilitarian and vocational aspect of education accompanied by the notion of immediate economic return appeals to the parents more than the academic discourse. In addition, there are many factors responsible for apathy of the parents towards education.

- Psychological and social factors like illiteracy of the parents and their indifference to education, lack or encouragement by the community, motivation and "insecurity" of future even after being educated.

- Low social interaction between students and teachers, and between teachers and parents.

- Suspicion over the sincerity of the non-tribal teachers and shortage of tribal teachers.

- The scattered population with low density and location of schools at a long distance, in consequence, has resulted in the indifference of the parents to send their children to walk a long distance to reach the school.

- Parental hesitation to send the girls to co-educational institutions.

Apathy of children towards Formal Education

In many states tribal education is taught through the same books, which forms the curriculum of the non-tribal children. A tribal child who lives in an isolated and far flung place, untouched by civilisation, can hardly get interest in any information about Indian society, history, polity, geography, economy and technological development of his country. So the contents of the teaching syllabus, instead of pleasing the learners, generate indifference within the tribal students.

Superstitions and Prejudice

Superstition, blind beliefs and prejudices play negative role in imparting education in the tribal areas and tribal schools. Except tribal communities in north-eastern region, there is widespread feeling in the tribal community that education makes their children defiant and insolent and alienates from the rest of their society. Some tribal groups believe that their god shall be angry if they send their children to schools run by 'outsiders'. Here outsiders include formal curriculum for education, non-tribal teachers and teachers outside their locality.

Problem of Suitable Teachers

The competency and interest of the teachers is of prime importance in generating interest of the students towards education. The non-tribal teachers treat themselves 'civilized' and tribals as 'uncivilized' and 'savage'. So there is little appreciation of the tribal values and way of life. There is no good relationship between children and the teachers.

Effective functioning of the tribal education much depends on teachers and their willingness to teach and positive attitude to live in tribal areas close to tribal schools. However, in practice the teachers are reluctant to reside in such areas, rather they stay in nearby towns. Only in those cases teachers would like to stay if the area is inaccessible. In maximum cases teachers in the tribal areas see the appointment as 'stop-gap' arrangement. So there comes

(7)

the problem of insincerity and non commitment of interaction of the teachers with the guardians and discussion with them over the education of their children.

Problem of Language

Language provides social, psychological and emotional expression of an individual in a society. But in the absence of knowledge of tribal dialect both students and teachers face the problem of communication and teaching-learning. It is found that tribal students are often ridiculed, humiliated and reprimanded for speaking in their own language, and are punished for failing to talk in their standard language or continuously lispsing back in the mother tongue.

Although there is the need of introduction of tribal dialect in the curriculum and teaching-learning process yet there is paucity of literature and text books in tribal dialects. While different commissions have recommended that the teachers knowing tribal languages are to be posted in tribal areas, the data reveal that only 6 percent of the teachers who are in the primary schools belong to tribal communities and out of this 50 percent of the teachers are untrained and are basically matriculates or below.

Inadequate Facilities

School buildings in the tribal areas are without basic infrastructural facilities. The schools basically have thatched roofs, dilapidated walls and non-pastoral floors. In Ashram schools which are residential in nature, there is no space for the children to sleep. As a consequence, the classrooms turn into dormitories and vice versa. In addition to poor maintenance of the schools and classrooms, inadequate teaching-learning materials such as blackboards and chalks causes problems for the teachers and students for the teaching and understanding the content.

Wastage and Stagnation

Another problem of education in the tribal areas is wastage and stagnation. Wastage is the withdrawal or dropping out of a student before completing the prescribed period of the concerned

course. A data revealed by the Eleventh Five year Plan also indicated the high drop out rate of the STs at different levels of study. As per the data, at the Primary level, the dropout rate among STs in 2003-04 was 48.9% and 70.1% at the Upper Primary Level. It indicates the apathy of the Tribals and tribal students for the existing curriculum and system and problems of teaching-learning process. When a student takes more than one year to pass a class it is considered a case of stagnation. As per the 11 Five Year Plan report, stagnation at the primary level was 67.3 percent whereas it was 49.3 percent at the Upper Primary level. School timing i.e. clash of class hour with the working hour particularly, during the harvesting period, formal education, poverty, lack of academic atmosphere, unwillingness of the teachers to convince the parents and parental apathy towards education and lack of proper medical aid, balanced diet are the major factors leading to is wastage and stagnation.

(8)

Conclusion

Education is the most effective instrument for ensuring equality of opportunity but the tribal people are lagging far behind non-tribals due to one or more reasons. The problems associated with education of the tribal children in India is manifold, complex and inter-related. Factors like poverty, apathy of the parents, superstition and prejudice, lack of suitable teachers, alien language, inadequate facilities in the educational institutionals and wastage and stagnation cause major hindrances in the process of education in the tribal schools. In this context, educating tribals needs concerted effort by the government and the society at large.

(The author is Assistant Professor in Political Science, Mody Institute of Technology & Science, Laksingarh (Sikar), Rajasthan)

Each soul is potentially divine. The goal is to manifest this divinity within by controlling nature, external and internal. Do this either by work, or worship or psychic control or philosophy - by one or more or all of these and be free.

— Swami Vivekananda

Education of tribal children

- Vinoba Gautam

The Indian Constitution assigns special status to the Scheduled Tribes (STs). Traditionally referred to as adivasis, vanbasis, tribes, or tribals, STs constitute about 8% of the Indian population. There are 573 Scheduled Tribes living in different parts of the country, having their own languages, which are different from the one mostly spoken in the State Where they live. There are more than 270 such languages in India. The largest number of tribals is in undivided Madhya Pradesh (16.40 million), followed by Orissa (7 million) and Jharkhand (6.6 million).

There were 16 million ST children (10.87 million of 6-11 years and 5.12 million of 11-14 years) as of March 2001. Out of the total child population in India of about 193 million are in the age group of 6 to 14 years (Selected Educational Statistics-2000-01, Government of India). Education of ST children is considered important, not only because of the Constitutional obligation but also as a crucial input for total development of tribal communities.

An important development in the policy towards education of tribals is the National Policy on Education (NPE), which specified, among other things, the following:

- Priority will be accorded to opening primary school in tribal areas;
- There is need to develop curricula and devise instructional material in tribal languages at the initial stages with arrangements for switchover to regional languages;
- ST youths will be encouraged to take up teaching in tribal areas;
- Ashram school/residential schools will be established on a large scale in tribal areas;

- Incentive schemes will be formulated for the STs, keeping in view their special needs and lifestyle.

The interventions being promoted in States under Janshala include:

- Schools, education guarantee centres and alternative school in tribal habitations for non-enrolled and drop-out children;
- Textbooks in the mother tongue for children at the beginning of the primary education cycle, when they do not understand the regional languages. Suitably adapted curriculum and the availability of locally relevant teaching and learning materials for tribal students;
- Special training for non-tribal teachers to work in tribal areas, including of tribal dialect;
- Deploying community teachers and special support of them.
- Bridge Language Inventory for use of teachers;
- School calendars in tribal areas appropriate to local requirements and festivals.
- Anganwadis and Balwadis or creches in each school in tribal areas so that the girls are relieved from sibling care responsibilities;
- Special plan for nomadic and migrant workers;
- Engagement of community organizers from ST communities with a focus on schooling needs of children from specific households;
- Ensuring sense of ownership of school committees by ST communities through increasing representatives of STs in VECs / PTAs etc. Involving community leaders in school management;
- Monitoring attendance and retention of children;
- Providing context specific intervention e.g. Ashram school, hostel, incentives etc.

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक का ज्ञानयज्ञ : गीता रहस्य

– डॉ. विद्या केशव चिटको

कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा 2 नवम्बर सन् 1910 को लोकमान्य बाल गंगाधर गत वर्ष तिलक ने ब्रह्मदेश के मंडाले जेल में गीता रहस्य लिखने की शुरुआत की थी। अतः नवम्बर में उसके सौ वर्ष पूरे हो गये।

श्रीमद्भगवद्गीता पर अनेक संस्कृत भाष्य, टीका एवं प्राकृत भाषान्तर, विस्तृत निरूपण और सहस्राधिक लेख प्रकाशित हो चुके थे। इतना होते हुए भी गीता रहस्य लेखन का कारण क्या ? इसका उत्तर तिलक ग्रन्थारंभ में प्रतिपाद्य विषय के विवेचन के पहले देते हैं। उन्होंने बतलाया है कि गीता के साथ उनका परिचय उस समय हुआ जब उनके पिताजी सन् 1872 में अपने जीवन के अंतिम पड़ाव पर थे। शैय्या पर पड़े पिताजी को भगवद्गीता पर “भाषा विवृति” नामक प्राकृत ग्रन्थ सुनाने का काम वही करते थे। उस समय उनकी अवस्था सिर्फ सोलह वर्ष रही। षोडश वर्षीय बालक को उस समय गीता का संपूर्ण भावार्थ समझना असंभव था। पर बाल्य काल के संस्कार चिर स्थायी होते हैं। गीता के लिए उनके मन में उसी समय से आकर्षण और कुतूहल बढ़ा था।

अनेक वर्षों के मनन चिंतन के परिपाक के उनके विचार दृढ़ होने लगे और सन् 1901 से ही तिलक इस विचार को जनता के सामने रखने लगे थे। 1 जनवरी सन् 1902 में नागपुर के मारिस कालेज में उन्होंने जो भाषण दिया था उसमें उन्होंने गीता रहस्य का सार संक्षेप प्रस्तुत किया था।

गीता रहस्य ग्रन्थ रूप में लिखने के लिए वे लगातार साधन सामग्री जुटा रहे थे। इस बीच उन्हें छह साल की कैद सुनायी गई और सन् 1908 में उनकी रवानगी मंडाले जेल में कर दी गई। बस ग्रन्थ रचना का अवसर आ गया। राजबंदी होने के कारण उन्हें सर्व सामान्य कैदी की तरह न रखकर उनकी स्वतन्त्र व्यवस्था की गई थी। एक रसोइया भी उनकी खिदमत में रहा। कुछ पुस्तकें भी उन्हें पढ़ने के लिए दी जाती थीं। शुरू-शुरू में तो सिर्फ चार ही पुस्तकें दी जाती थीं पर जेल के अधिकारियों ने जब गौर किया कि यह शख्स आध्यात्मिक पुस्तकों की ही मांग करता है तो बाद

में चार से अधिक पुस्तकें उन्हें दी जाने लगीं। ब्रिटिश सरकार की मेहरबानी ही कहिए कि पूना से किताबें मंगवाने की इजाजत भी उन्हें मिल गई। उस समय तिलक जी ने जो पुस्तकें पूना से मंगवायी थीं उनकी संख्या हजारों में थी। लकड़ी के बक्से में बन्द कर मंगवाये गये ग्रन्थ भेजे जाते थे। बढई जब किताबें बक्से में भरता तो साथ में ‘बाबू को दण्डवत’ भी लिख भेजता।

जेल में जाने के दो वर्ष बाद तिलक जी ने गीता रहस्य लिखना शुरू किया था। 45 अंश सेल्सियस उष्णता मान ! असह्य गर्मी! उसमें जेल की वह कोठरी जिसमें पर्याप्त शुद्ध हवा का अभाव! सब समय पसीने से तर-बतर और ऊष्मा से बेचैन! ऐसी स्थिति में निरंतर लिखने रहना कोई सहज बात नहीं थी। पूरे साढ़ तीन महीने में संपूर्ण ‘गीता रहस्य’ याने परिशिष्ट सहित प्रथम पंद्रह अध्याय (छपे पृष्ठ 588) उन्होंने पेन्सिल से लिखे थे। नवम्बर माह में लेखन की शुरुआत की और दो मार्च को लिखे गए पत्र में तिलक लिखते हैं कि—“मैं जिसे गीता रहस्य कहता हूँ वह पूर्ण हुआ।”

(10)

गीता रहस्य के प्रथम आठ अध्याय (छपे पृष्ठ 179) उन्होंने छत्तीस दिन में लिखकर पूर्ण किये। उसके बाद के (छपे पृष्ठ 229) उन्होंने सैंतीस दिनों में पूर्ण किये। वे प्रतिदिन लगभग साढ़े ग्यारह पृष्ठ लिखा करते थे। तत्त्वज्ञान और अध्यात्म शास्त्र पर लिखा गया यह ग्रन्थ अपने आप में बेजोड़ है। ग्रीन नामक पाश्चात्य विद्वान ने माना कि “प्रोलिगोमेना टू इथिक्स” की पद्धति पर यह लिखा गया है।

गीता के चार से अट्ठारह अध्याय का मराठी में भाषांतर उन्होंने बीस दिन में पूर्ण किया। तत्पश्चात् वे इस ग्रन्थ में सुधार करने लगे थे। विशेष रूप से दुर्बोध भाग को अत्यधिक सरल करना, अधूरा अपूर्ण महसूस होने पर और अधिक संदर्भ देकर उसे पूरा करना, असंबद्ध भाग उसमें से अलग करना-ये काम उसमें शामिल थे।

इस ग्रन्थ से सटीक प्रामाणिक जानकारी प्राप्त हो सके इसके लिए तिलक जी ने कठोर परिश्रम किया। प्रेस में छपने जाने के पूर्व भाषा और वाक्य रचना भली-भाँति देख लिया जाय, इसके लिए उन्होंने कृष्णा जी प्रभाकर खाडिलकर को पांडुलिपि देखने के लिए दी थी।

चित्रशाला प्रेस, पुणे में गीता रहस्य की छपाई शुरू हुई। तिलक जी प्रतिदिन वहां जाकर नजर डालते कि काम कितना आगे बढ़ा है। उनकी नियमितता देखकर सभी चकित थे। प्रतिदिन प्रेस खुलने के पहले ही वे वहां पहुंच जाते थे इतनी उन्हें इस ग्रन्थ के प्रति उत्सुकता रही। प्रेम का एक कर्मचारी-जय मंद गति से काम करने वाला था। तिलक जी स्वयं उसके काम में लग जाते थे।

प्रथम विश्वयुद्ध का जमाना था। कागजी की कठिनाई थी। तिलक जी पर प्रजा की अपरंपार श्रद्धा थी। इस कारण कागज के लिए उन्हें किसी का मुंह नहीं जोहना पड़ा। बम्बई के स्वदेशी मिल के मालिक पद्म जी और पूना के रे पेपर मिल ने उन्हें जितना जरूरी था कागज दिया।

तिलक जी ने गीता रहस्य की कीमत रखी तीन रुपये। जब अण्णासाहब पटवर्धन ने उन्हें सुझाया कि ग्रन्थ की कीमत पाँच रुपये रखी जाय तब तिलक जी गुस्से से बोले-“गीता” भगवंत का गायन है। उस पर नफा नहीं कमाना है। सर्व साधारण सामान्य व्यक्ति भी खरीद सके, यह मैं चाहता हूँ। बायबल आठ आने में मिलती है। बायबल जैसी ही गीता रहस्य की प्रतियां निकालने की उनकी इच्छा रही। उन्होंने कहा कि गीता रहस्य की बिक्री पर प्राप्त पैसा राजनीति में लगाने की मुझे जरूरत नहीं है।

सन् 1915 के जून महीने में यह पुस्तक बिक्री के लिए गायकवाड़ वाडा के दो बड़े चबूतरों पर रखी गई। सुबह से ही लोग लाइन में लग गए थे। एक व्यक्ति एक प्रति। तिलक जी ने पहले से ही घोषित कर दिया था। छपी छह हजार प्रतियां छह हजार लोगों के पास पहुंचे, यह उनका हेतु रहा। बाहर गांव से आये हुए लोगों के लिए भी यही नियम था। जितनी प्रतियां छपी गई थीं, सब बिक जाने पर तिलक जी ने पुनर्मुद्रण का काम शुरू किया।

तिलक ने गीता रहस्य की रचना मराठी भाषा में क्यों की? वे अंग्रेजी भाषा के उद्भूत विद्वान थे। इस ग्रन्थ की रचना के पूर्व “ओरायन” और “आर्किटिक होम इन द वेदाज” इन दो ग्रन्थों की रचना उन्होंने अंग्रेजी में की थी जो मानक समझे जाते हैं। दोनों ग्रन्थ उन्होंने मुख से बोलकर लिखवाए थे। इस पार्श्वभूमि पर गीता रहस्य का लेखन स्वहस्ते और इतने कम समय में लिखकर पूर्ण करना निश्चित ही आश्चर्यचकित कर देता है। मराठी भाषा में लिखने का कारण तिलक जी ने कहा-“मुझे युवा पीढ़ी को गीता का कर्म योग सिखलाना है, अंग्रेजों यूरोपनियों को नहीं। हमारे लोग कर्मयोग भूल गये हैं। आज जो हमारी दुर्दशा हुई है उसका मुख्य कारण कर्म योग भूलना है।

ईश्वर प्रदत्त प्रतिभा, तीक्ष्ण स्मृति शक्ति, विद्या व्यासंग, नित्य नव चिंतन में लीन रहते तिलक जी की जब मंडाले जेल से रिहाई हुई, उस समय उनकी कोठरी में चार सौ पुस्तकें थीं। गीता रहस्य की हस्त लिखित प्रति ब्रिटिश सरकार ने उन्हें नहीं दी। उस समय सभी चिन्तित थे कि यदि अंग्रेज सरकार ने इसे जब्त कर लिया और प्रति नहीं दी तो क्या होगा? तिलक जी ने शान्त भाव से उत्तर दिया कि हस्तलिखित ब्रिटिश सरकार ने जब्त किया है पर ग्रन्थ तो मेरे दिमाग में है न! मैं सिंहगढ में बैठकर पुनः जस का तस लिखूंगा। इतना दुर्दम्य आत्म विश्वास! कितना भरोसा अपनी विलक्षण

स्मृति पर! पर सौभाग्य से वह अवसर नहीं आया। ओरियेन्टल ट्रान्सलेटर के पास उसे भेजा गया था परीक्षण हेतु। पूरे छह महीने बाद हस्तलिखित तिलक जी के सुपुर्द किया गया।

कर्म क्यों करना? इसलिये कि यह यज्ञ है। संसार चक्र चलते रहने के लिए और लोक संग्रह हेतु। जीने के लिए सभी व्यवहार नियमित रूप में चलते रहें इसके लिए कर्म करना आवश्यक है। उनका लोक संग्रह का अर्थ व्यापक रहा। समाज की सुस्थिति उत्तरोत्तर रहस्य पर भाषण देते समय उन्होंने इसे स्पष्ट किया है। निष्काम कर्म याने फलाशा छोड़ दिया गया कर्म। तिलक जी ने यह कहा तो पर सभी को यह स्वीकार होना कठिन ही है। कारण यह कि यदि फल प्राप्त ही न होता हो तो काम क्यों किया जाय? यह प्रश्न सहज उठता है। अनेक लोग इस बारे में विचार करते हैं। तिलक जी ने इस संभ्रमावस्था को दूर किया है। वे कहते हैं फलाशा के त्याग का मतलब प्राप्त फल को छोड़ देना नहीं, फल प्राप्त करने के लिए योजनाबद्ध कर्म करना है। मेरे काम का फल मुझे ही चाहिए इस प्रकार की ममत्वयुक्त आसक्ति नहीं हो। इस आसक्ति में ही दुख का मूल समाया हुआ है।

(11)

“उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत” उठो जाग्रत हो और भगवंत का आशीर्वाद समझ कठोपनिषद के मंत्र (3-14) प्रेमोदक पूर्व मैं वाचको के हाथ सौंपता हूँ, इस में सभी कर्माकर्मों का बीज है। इस धर्म का स्वल्पाचरण भी बड़े संकटों से युक्त रकता है ऐसा भगवंत श्रीकृष्ण का निश्चयपूर्वक आश्वासन है। इससे और अधिक क्या चाहिये? बिना किये कुछ होता नहीं, सृष्टि का यह नियम है। निष्काम बुद्धि से कर्ता बनें। बस यही चाहिए।

बाल गंगाधर तिलक लिखित गीता रहस्य का भाषांतर अनेक भाषाओं में हुआ है। बंगला भाषा में ज्योतिन्द्रनाथ ठाकुर, गुजराती में यू.के. त्रिवेदी, हिन्दी में जे.के. शर्मा और माधवराव सप्रे, कन्नड़ भाषा में व्ही.बी. अलूर और व्ही एस करूर, मलयाली में के.के. नायर, अंग्रेजी में अब तक सात भाषांतर, तमिल में एस शास्त्री, तेलगु भाषा में एन एस शास्त्री और यूरिया भाषा में डॉ. सनिहा ने किया है। अमेरिका में टक्सास की राजधानी आस्टिन के ग्रन्थालय में “ओरायन” और “गीता रहस्य”की पुरानी प्रति रखी हुई है।

प्रतिभाशाली विद्याव्यासंगी वेद पुराण और शास्त्रों का तर्काधिष्ठित सारासार विवेचन प्रस्तुत करने वाले प्रखर राष्ट्रभिमानि तिलक सच्चे अर्थ में भारत के सुपुत्र थे। किसी भी देश और प्रान्त राज्य की सीमा में वे नहीं बंधे। वे सामान्य जन-जन के रहे, इसलिए कहलाये लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक। □

भारतीय अवतारवाद का वैज्ञानिक आधार

– सुरेश चंद्र

पौराणिक कथाओं का जन्म उसी समय हो गया होगा जब मानव ने इस पृथ्वी पर आँखें खोली एवं उसमें चेतना जाग्रत हुई। सूरज, चांद, तारे, अग्नि, बादल इन सबको देखकर वह आश्चर्य से भर उठा। इनमें से कुछ से उसे भय लगता था एवं कुछ को वह प्यार करता था। अग्नि उसे डराती थी एवं पवन उसे प्रिय लगती थी। उसने इन्हें विभिन्न देवी, देवताओं का नाम दिया। कालान्तर में इनके विषय में अनेक कहानियाँ प्रचलित हो गई एवं समय के साथ ये कहानियाँ अधिक लम्बी, दिलचस्प और शिक्षाप्रद भी बनती गईं।

ऐसा केवल भारतवर्ष में ही नहीं हुआ अपितु संसार के अनेक देशों में अनेक देवी, देवताओं की कल्पना की गई एवं उन्हें कुछ विशिष्ट गुणों से विभूषित किया गया। यूनान में अपोलो संगीत के देवता हैं एवं मिडास एक ऐसा व्यक्ति है जिसके स्पर्श मात्र से हर वस्तु सोना बन जाती थी। वीनस जहाँ सौंदर्य की देवी है एवं हरक्युलिस शक्ति का देवता है। रोम और अन्य देशों में भी ऐसे ही देवताओं की कल्पना की गई। बौद्ध धर्म की जातक कथायें प्रसिद्ध हैं। जैन धर्म के अनेक तीर्थंकरों की कथाएँ मौजूद हैं जिनमें कुछ ऐतिहासिक हैं एवं कुछ किवंतदियों पर आधारित हैं।

किन्तु इन पौराणिक कथाओंके मामले में हिन्दू धर्म ने सबको पीछे छोड़ दिया है। यहाँ अठारह पुराण मौजूद हैं, जिनमें हजारों देवी, देवताओं की कहानियाँ लिखी गई हैं। विशेष बात यह है कि इन कहानियों में अनेक ईश्वरीय अवतारों की भी कथाएँ हैं। इन अवतारों एवं पौराणिक कथाओं को शत प्रतिशत सत्य मानने से लेकर इन्हें कोरी गप्प मानने वाले तक यहाँ मौजूद हैं। किन्तु विचित्र बात यह है कि इस विपुल साहित्य का आज तक किसी भी भारतीय ने वैज्ञानिक एवं तार्किक विश्लेषण नहीं किया है।

उससे भी आश्चर्य की बात यह है कि पुराणों में वर्णित अवतारों का गैर धार्मिक अध्ययन किसी भारतीय के द्वारा न होकर एक अंग्रेज विद्वान जे.बी.एस. हल्डेन द्वारा किया गया। हल्डेन का जन्म 1892 में इंग्लैंड में हुआ था। उनकी शिक्षा दीक्षा इंग्लैंड की कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी तथा अमेरिका की कैलीफोर्निया यूनिवर्सिटी में हुई थी। वे अपने समय के प्रसिद्ध जीवन उत्पत्ति एवं विकास विज्ञान के विशेषज्ञ थे एवं साथ ही एक सांख्यविद भी थे। 1960 में वे स्टैटिस्टिकल इंस्टीच्युट ऑफ इण्डिया कलकत्ता में रिसर्च हेतु आ गये थे एवं उसके पश्चात् उड़ीसा के एक संस्थान में कार्य

करने लगे। 1961 में उन्होंने भारत की नागरिकता ग्रहण कर ली। उनकी मृत्यु भारत में ही 1964 में हुई।

हल्डेन ने चार्ल्स डार्विन के विकासवादी सिद्धान्त का गहन अध्ययन किया था एवं इसके लिये उन्हें 1952 में डार्विन मेडल भी मिला था।

इस सन्दर्भ में चार्ल्स डार्विन एवं उनके जीव विकास वादी सिद्धान्त का संक्षिप्त परिचय देना भी उचित होगा। चार्ल्स डार्विन (1809-1882) इंग्लैंड के एक प्रख्यात जीव वैज्ञानिक थे जिन्होंने जीवों तथा पेड़ पौधों का “विकास वादी सिद्धान्त अथवा क्रमशः स्वरूप परिवर्तन सिद्धान्त” की खोज की थी। उन्होंने दक्षिणी अमेरिका के तटीय क्षेत्रों की यात्रा की एवं पांच वर्षों तक वहाँ उपलब्ध जीवाश्मों (फासिल्स) का अध्ययन किया। इस अध्ययन के फलस्वरूप वे कुछ निष्कर्षों पर पहुँचे। उस समय तक पश्चिमी संसार में बाइबिल का यह कथन अक्षरशः सही माना जाता था कि सृष्टि की रचना ईश्वर ने छैः दिन में की थी एवं सातवें दिन विश्राम किया था। ईश्वर ने इस सृष्टि को जैसा बनाया था तब से यह वैसी ही बनी हुई है।

(12)

उपरोक्त मान्यता के विरुद्ध डार्विन का कथन था कि ब्रह्माण्ड, पृथ्वी एवं इस समस्त भौतिक संसार में निरन्तर परिवर्तन हो रहे हैं। पेड़, पौधों एवं जीव-जन्तुओं (मानव जीवन सहित) का विकास अत्यन्त सरल प्रारम्भिक अवस्था में हुआ है। आज जिस अवस्था में हम हैं इसका विकास एक आदिम अवस्था वाले जीव से हुआ था एवं उस जीव का विकास उससे भी निम्न अवस्था वाले जीव से हुआ। हम यह कह सकते हैं कि समस्त जीवन का विकास एक अकेली जीव कोशिका से हुआ।

प्रारंभ में डार्विन ने अपने सिद्धान्त का सार्वजनिक रूप से प्रकाशन नहीं किया किन्तु 1859 में उन्होंने Origin of Species नाम की किताब लिखी जिससे तहलका मच गया। प्रारम्भ में वैज्ञानिक इसे मानने के लिये तैयार नहीं थे किन्तु बीसवीं सदी के मध्य तक इस सिद्धान्त को आंशिक रूप से वैज्ञानिक एवं सामाजिक मान्यता मिलने लगी थी।

अलग-अलग पुराणों में 8 से लेकर उनतीस अवतारों का वर्णन है किन्तु आठ इन सबमें साझा हैं। इनके नाम हैं-मत्स्य, कूर्म, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम एवं कृष्ण। इनमें राम एवं कृष्ण के अतिरिक्त किसी का भी कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता। गरुड़ पुराण में पहले चार अवतारों को सतयुग का, उसके बाद के तीन को त्रेता का एवं कृष्ण को द्वापर युग का अवतार बतलाया गया है।

तीक्ष्ण बुद्धि वाले जे.बी.एस. हल्डेन ने जब भारतीय संस्कृति से संबंधित पुराणों

सहित अनेक ग्रन्थों का अध्ययन किया तो उन्हें लगा कि पुराणों के अवतारवाद एवं डार्विन के विकासवादी सिद्धान्त में कहीं कुछ समानता है। यद्यपि पुराणों में वर्णित तथ्यों के प्रमाण में कोई वैज्ञानिक आधार नहीं दिये गये हैं किन्तु पुराण लेखकों की कल्पना लगभग वहीं पहुँचती है जहाँ चार्ल्स डार्विन अपने विशद अध्ययन के बाद पहुँचे थे।

डार्विन ने अपने विकासवाद में जीवन की उत्पत्ति समुद्र से मानी है। पुराणों का प्रथम अवतार मत्स्यावतार अर्थात् मछली थी जो जल से जीवित रहने वाला प्राणी है। धीरे-धीरे इस प्राणी ने जल एवं स्थल दोनों पर रहना सीखा एवं यह विकसित होकर कच्छपावतार (कछुआ) बन गया। यह अंडे भी दे सकता है। अब बारी स्तनधारी जीवों की थी। वारहावतार से स्तनधारी जीवों का इस धरती पर विकास हुआ। नरसिंहावतार पशु एवं मनुष्य का मिला जुला रूप था एवं इस धारणा को पुष्ट करता है कि मानव का विकास पशु से ही हुआ है। वामन यानी बौना मनुष्य के आदिम काल के मानव का प्रतिनिधि है।

विकास के इस क्रम में स्वाभाविक रूप से अब बारी मनुष्य की आती है। आदिम मानव अत्यंत शक्तिशाली किन्तु बर्बर था। परशुराम विकास के उसी क्रम की एक कड़ी हैं। अवसर आने पर वे अपनी माता की भी हत्या कर डालते हैं। मानव ने आदिमयुग से कृषि युग एवं सामंतवादी युग में प्रवेश किया। यहाँ राजा लोग अपने राज्यों में एक छत्र राज्य करते थे। राम का अवतार उसी युग का प्रतिनिधित्व करता है। सामन्तवादी पृष्ठभूमि से आने के बावजूद राम ने एक आदर्श राजा की कल्पना को साकार किया एवं अनेक मर्यादाएँ स्थापित कीं। कृष्णावतार पूर्ण पुरुष का प्रतिमान है। वे एक प्रेमी, कलाकार, योद्धा, विद्वान, योगी सभी कुछ थे। मानवोचित जिन गुणों की हम कल्पना कर सकते हैं उनमें वे मौजूद थे। कृष्ण मानव के विकास की उच्चतम कड़ी हैं।

इस कड़ी में इस तथ्य पर भी विचार करना उचित होगा कि अवतार किसको कह सकते हैं। पुराणों में जिन आठ अवतारों के नाम गिनाए गये हैं उनमें प्रथम पांच अर्थात् मत्स्य, कूर्म, वाराह, नृसिंह एवं वामन को उनके जैविक नामों से पुकारा गया है। शेष तीन अपने व्यक्तिगत नाम अर्थात् परशुराम, राम, एवं कृष्ण के नाम से प्रसिद्ध हैं। किन्तु अवतार किसे कह सकते हैं एवं कौन से गुण किसी को अवतार बनाते हैं यह एक ज्वलंत प्रश्न है। प्रथम अवतारों में कोई ऐसा गुण नहीं था कि उन्हें अवतार कहा जाये सिवा इसके कि वे मानव जाति के विकास क्रम में एक विशिष्ट चरण का प्रतिनिधित्व करते हैं। नृसिंह एवं वामन के साथ प्रह्लाद भक्त एवं राजा बलि

की कथाएँ जुड़ी हुई हैं। परशुराम अकेले ऐसे अवतार थे जो त्रेता द्वापर दोनों ही युगों में मिलते हैं अर्थात् वे अमर हैं।

राम एवं कृष्ण भारतीय जनमानस में एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। रामायण एवं महाभारत जैसे महाकाव्यों ने उनको अमर बना दिया है। किन्तु इन दोनों महाकाव्यों के और भी कुछ पात्र ऐसे हैं जो अवतार की अवधारणा के निकट हैं। भीष्म उनमें से एक हैं। अवतार में कहीं ईश्वरीय गुणों की स्थापना मनुष्यों में की गई है तो कहीं उनके रूप में ईश्वर के जन्म लेने की बात भी आती है। ऐसा लगता है कि पुराणों ने अवतार बनने के लिये केवल ईश्वरीय गुणों को ही पर्याप्त नहीं माना है। उन गुणों को व्यवहार में लाना भी आवश्यक है। अवतार वही व्यक्ति हो सकता जिसे उचित निर्णय लेने में तनिक भी दुविधा नहीं होती। उनके विचार, व्यवहार एवं कार्य में कहीं कोई अन्तर नहीं होता। महाभारत के सर्वगुण सम्पन्न पात्र जैसे भीष्म, युधिष्ठिर एवं अर्जुन प्रायः ही दुविधा के शिकार होते दिखलाई पड़ते हैं। अतः भारतीय सोच के अनुसार वे अवतार का दर्जा नहीं पा सकते।

अवतारवाद के इस सिद्धान्त से हम जैसे साधारण मनुष्य भी कुछ सीख सकते हैं।

(13)



बुद्ध जयन्ती

बुद्ध उवाच

- ★ दुनियां में दुख है। दुःखों की कोई-न-कोई वजह है। दुखों का निवारण मुमकिन है।
- ★ दुखों की मूल वजह अज्ञान है। अज्ञान के कारण ही इंसान मोह-माया और तृष्णा में फंसा रहता है।
- ★ अज्ञान से छुटकारा पाने के लिए अष्टांग मार्ग का पालन है: 1. सही समझ, 2. सही विचार, 3. सही वाणी, 4. सही कार्य, 5. सही आजीविका, 6. सही प्रयास, 7. सही सजगता और 8. सही एकाग्रता।
- ★ इस ब्राह्मांड को चलाने वाला कोई नहीं है और न ही कोई बनाने वाला है।
- ★ साधना के जरिए सर्वोच्च सिद्ध अवस्था को पाया जा सकता है। यही अवस्था बुद्ध कहलाती है और इसे कोई भी पा सकता है।
- ★ न तो ईश्वर है और न ही आत्मा। जिसे लोग आत्मा समझते हैं, वह चेतना का प्रवाह है।

अवतार और उनकी कला

- पं. माधवाचार्य

कहा जाता है कि रामचन्द्र जी बारह कला के अवतार थे और कृष्ण जी सोलह कला के अवतार थे-सो यह कला से क्या तात्पर्य है?

जैसे संसार में अलग-अलग विषयों के परिज्ञान को 'कला' कहते हैं और कुल मिलाकर चौंसठ कलाएं मानी गई हैं, इसी प्रकार परमात्मा की समस्त लोकोत्तर प्रधान शक्तियां भी चौंसठ हैं और वे कलाओं के नाम से प्रसिद्ध हैं।

कला की सर्व-व्यापकता

कला केवल राम कृष्णादि भगवान् के अवतारों में ही नहीं होती, किन्तु कला तो इतनी सर्वव्यापक है कि यह दृश्यमान समस्त चराचर, न्यूनाधिक रूप में सर्वथा उससे संपृक्त है। कला आप में भी है और हममें भी। पशु-पक्षी भी कला विशिष्ट हैं और वृक्ष एवं लता आदि भी। उपनिषदों में हमें कला के विकास से समस्त सृष्टि के प्रादुर्भाव का बड़ा सुन्दर वर्णन मिलता है। वहां बतलाया गया है कि संसार की रचना के समय सृष्टि-प्रक्रिया के नियमानुसार सर्वप्रथम अन्न कला का विकास हुआ और इससे उद्भिज्ज जगत्-वृक्ष लता, गुल्म, वनस्पति आदि की-उत्पत्ति हुई। उद्भिज्जों में इसी कला की प्रमुखता है।

स्वेदज-मक्खी, मच्छर, जूं, लीख कीटाणु आदि छोटे-छोटे दृश्य अदृश्य-प्राणियों में अन्नमय कला के साथ प्राणमय कला का भी विकास देखने में आता है। इस कला के अभाव के कारण वृक्ष स्थावर तथा जड़ रहने के लिए विवश थे, वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर आ जा नहीं सकते थे, परन्तु स्वेदज प्राणियों में प्राणकला की यह विशेषता विद्यमान है कि वे यथेच्छ चल-फिर, उड़ सकते हैं। यही नहीं किन्तु प्राण शक्ति की कुछ और विशेषताएं भी उनमें देखी जा सकती हैं। ये जीव केवल चलते-फिरते ही नहीं, किन्तु काटते भी हैं है। प्लेग आदि के कीटाणु रोगी को काट कर प्राण तक हरण कर लेते हैं।

कबूतर, चिड़िया, तोता, मैना, साँप, मयूर आदि अण्डजों में अन्न, प्राण के अतिरिक्त मनोमय कला का ओर विकास हो जाता है ये पक्षी जहां खा-पी सकते हैं, यथेच्छ उड़ सकते हैं वहां मनोमय कला के विकास के कारण इनमें एक विशेषता

है जो पहिले जीवों में नहीं थी। चूँकि हमारा मन सुख, दुःखादि की उपलब्धि का साधन है जरायुज-अर्थात् पशुओं में पूर्ववर्ती उद्भिज्ज, स्वेदज और अण्डजों की अपेक्षा 'विज्ञानमय' कला का समावेश और अधिक हो जाता है। इस कला के विकास के कारण ही पशुओं में ज्ञान की कुछ मात्रा आ जाती है। घोड़ों और कुत्तों की असीम स्वामिभक्ति, वानरों की मानव सदृश चेष्टायें, हाथियों का यूथप के नायकत्व में संगठन पूर्वक निवास, गाय-भैंस आदि का दिन भर चर-चरा कर अपने ठीक घर में वापिस आ जाना और सरकसों में सघाये हुये जानवरों द्वारा विविध क्रीड़ा-प्रदर्शन इसी विज्ञानमय कला के विकास के कारण ही सम्भव हो सके हैं।

मानव श्रेणी की गणना इसके अनन्तर की सृष्टि में आती है। मानवों में अन्न, प्राण, मन, विज्ञान और 5वीं कला आनन्द के साथ-साथ अन्य कलाओं का भी विकास पाया जाता है। इस प्रकार मानवों में हमें 8 कला तक के मनुष्य मिल सकते हैं। पूर्ववर्ती जीवों को जैसा कुछ प्रकृति ने बनाया वे उसी प्रकार रहकर जीवन-निर्वाह करते हैं, परन्तु मनुष्य में यह बात नहीं। आनन्द कला के विकास से उसके संपूर्ण कार्य-कलाप का उद्देश्य आनन्द प्राप्ति करना हो जाता है।

(14)

यह तो हुई सर्वसाधारण की बात। अपने-अपने शुभ कर्मों और संस्कारों के कारण, अथवा जप-तप योगादि शास्त्र प्रोक्त साधनों द्वारा पुरुष में अतिशायिनी, विपरिणामिनी, संक्रामिणी आदि-आदि विशेष कलाओं का विकास भी हो जाता है। ऐसी दशा में ये कलायें तद्विशिष्ट पुरुषों को साधारण मानव कोटि से उठाकर महापुरुषों की श्रेणी में बैठा देती है।

अतिशायिनी कला-विशिष्ट पुरुष उन साधारण कार्यो को करने में समर्थ होता है जिन्हें सामान्यजन कल्पना से भी बाहर समझते हैं। इसके क्षेत्र अनेक हो सकते हैं जैसे-आत्मा, मन, बुद्धि, शरीर, वैभव, ज्ञान आदि। कर्मानुसार यदि मनुष्य इन क्षेत्रों में से किसी भी एक क्षेत्र में अतिशायित्व प्राप्त कर ले तो उसकी गणना विशिष्ट कोटि के पुरुषों में होने लग जाती है और सामान्यजन स्वयं पुकार उठते हैं कि उसके पास तो सचमुच भगवान् की निराली देन है।

विपरिणामिनी संक्रामिणी कलाओं का सम्बन्ध इससे भी ऊपर के कोटि के मनुष्यों के साथ है। ये कलायें प्रायः योगियों या अनन्य निष्ठा वाले प्रभु भक्तों में विकसित होती हैं और इनकी सहायता से वह अनेक असम्भव कार्यो को सम्भव कर दिखाते हैं। अणिमा आदि आठों सिद्धियाँ-जिनके प्रभाव से योगी लोग स्वशरीर को यथेष्ट छोटा-बड़ा, हल्का-भारी कर लेते हैं-इसी के अन्तर्गत आती हैं। विपरिणामिनी कला के होने पर जिस किसी वस्तु को अपने दृढ़ संकल्प मात्र से अन्य रूप में

परिवर्तित कर सकना योगी के बायें हाथ का खेल है। परकाय-प्रवेश, सर्वभूतरुतज्ञान, लोकान्तर-गमनादि भी इसी से संभव होते हैं।

संक्रमिणी कला की सहायता से मनुष्य अपनी अपूर्व तथा विशिष्ट शक्ति को दूसरे व्यक्ति में भी संक्रमण कर सकता है। महाभारत युद्ध में योगेश्वर श्रीकृष्ण ने इसी की सहायता से संजय को अपने दिव्यनेत्र प्रदान किये थे, जिससे वह सम्पूर्ण महाभारत को हस्तिनापुर में बैठे-बैठे देखने में समर्थ हो सके थे।

यहां तक तो हुई मानवों की बाता। इससे ऊपर अर्थात् 9 से लेकर 16 कला तक का विकास देवों और अवतारों में होता है उन अवशिष्ट 8 कलाओं के नाम हैं—(9) प्रभ्वी, (10) कुण्ठनी, (11) विकासिनी, (12) मर्यादिनी, (13) संहदिनी, (14) आह्लादिनी, (15) परिपूर्ण, (16) स्वरूपावस्थिति।

(9) प्रभ्वी का अर्थ है कर्तुं अकर्तुं अन्यथाकर्तुं समर्थ होना। जिस प्रकार भगवान् ने नर और सिंह का अभूतपूर्व तथा आश्रुत पूर्व शरीर धारणकर और उसको पत्थर के खम्भे से उत्पन्न कर सृष्टि नियम विरुद्ध कार्य सम्पन्न किया था। (10) कुण्ठनी का अर्थ है पंच महाभूत और विषादि की शक्ति को सर्वथा अक्षम कर देना। भगवान् कृष्ण का दावानल पान और भगवान् विष्णु ने तीन पाँवों में ही सारे ब्रह्माण्ड को नाप कर 'त्रिविक्रम' नाम को चरितार्थ किया था। (11) विकासिनी कला के प्रयोग से वामनावतार में भगवान् विष्णु ने तीन पाँवों में ही सारे ब्रह्माण्ड को नाप कर 'त्रिविक्रम' नाम को चरितार्थ किया था। (12) मर्यादिनी कला के वैशिष्ट्य से भी भगवान् राम ने सर्वशक्ति-सम्पन्न होते हुए भी सब क्षेत्रों में शास्त्र मर्यादा का पालन कर 'मर्यादापुरुषोत्तम' के सम्मान्य विरुद्ध को धारण किया था। (13) संहदिनी का अभिप्राय है-अऋतु और असमय में पुष्प फलादि का उद्गम आदि करके प्राकृतिक नियमों में परिवर्तन कर देना; जैसा कि रासलीला के समय भगवान् श्रीकृष्ण ने शरद् ऋतु के लक्षणों का सम्मिश्रण कर दिया था और विविध पुष्पों के मनमोहक वास से समुना का वह सारा पुलिन सुरभित हो उठा था। (14) आह्लादिका श्री राधिका जी, जो कि भगवान् की आदिशक्ति हैं और कृष्ण अवतार की लीलाओं के समय प्रभु की नित्य सहचरी रहकर उनका अनुरंजन करती रहीं। (15) परिपूर्ण अर्थात् सम्पूर्ण कलाओं में निपुणता की पराकाष्ठा, यथा श्रीकृष्णावतार में भगवान् कृष्ण की विविध कलाओं में अतिशय निपुणता। उनकी अंगुलियां इतनी कोमल और हल्की थीं कि वे बांसुरी वादन में दक्षता प्राप्त करके विश्व को मुग्ध कर सके और कठोर इतनी कि उनके द्वारा गोबर्धन पर्वत धारण जैसा कठोर कर्म सम्पन्न कर सके। (16) स्वरूपावस्थिति=समस्त कलाओं का उपसंहार करके निज रूप में अवस्थिति। जैसे

भगवान् कृष्ण द्वापर के अन्त में अपनी समस्त कलाओं को समेट कर अपने नित्य स्वरूप में समा गये थे।

क्या अवतार छोटे-बड़े भी होते हैं?

कहा जाता है कि राम द्वादश कला पूर्ण अवतार थे और कृष्ण षोडश कला पूर्ण थे, परशुराम जी चार ही कला के बतलाये जाते हैं। क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता, कि राम कृष्ण से छोटे थे और परशुराम जी उन दोनों से भी छोटे थे-इस तरह कलाओं के तारतम्य से एक ही परमात्मा छोटा-बड़ा और मझोला नाना प्रकार का बन जाता है-यह क्यों?

वास्तव में परमात्मा के सभी अवतार समान शक्ति के होते हैं, उनमें शक्ति के न्यूनाधिक्य के कारण छोटाई-बड़ाई का कोई प्रसंग नहीं। परन्तु संयोगवश जिस अवतार को जितना अधिक भूभार उतारने का, जितनी अधिक लीलाएं प्रकट करने का और अपनी जितनी अधिक विभिन्न कलाओं के प्रदर्शन का अवसर मिला, तदनुसार व्यवहार में उसको उतनी ही कला का कहा जाने लगा। इसलिये अमुक अवतार इतनी कला का है-इसका अर्थ यह नहीं कि कलाओं की संख्या के अनुसार उनके छोटा या बड़ा होने का अनुमान किया जाए। किन्तु कौन अवतार संयोगवश कितनी लीलायें कर पाया है? यही उन कलाओं के तारतम्य का तात्पर्य है।

(15)

शास्त्र के सिद्धान्त के अनुसार और प्रत्यक्ष में भी सूर्य का नाम द्वादशात्मा है अर्थात्-उसकी बारह कलाएं हैं जो बारह आदित्य माने जाते हैं। इसीलिए सूर्य के विभिन्न बारह भेदों के अनुसार ही बारह महीने होते हैं। फलतः सूर्यवंशावतंस भगवान् रामचन्द्र जी महाराज द्वादश कलापूर्ण अवतार कहे जाते हैं। ऐसे ही चन्द्रमा की सोलह कलाएं होती हैं, प्रतिपदा को एक कला उदित होती है और पूर्णिमा को वह षोडशकलापूर्ण दीख पड़ता है, सो श्रीकृष्ण भगवान् चन्द्रवंशावतंस हैं इसलिए वे षोडशकलापूर्ण कहे जाते हैं।

सो जैसे चान्द्रगणना के अनुसार श्रीकृष्ण जी सोलह कला सम्पन्न होने के कारण पूर्णावतार कहे जाते हैं तथैव श्रीरामचन्द्र जी सूर्य गणना के अनुसार बारह कला सम्पन्न होने पर भी पूर्णावतार ही कहे जाते हैं।

□

मानव-उत्कर्ष के कवि रवींद्रनाथ टैगोर

— चक्रधर नलिन

रवींद्रनाथ टैगोर की वाणी समूची मानवता के उत्कर्ष का पर्याय थी। उन्होंने नाना प्रकार से मानवीय संकीर्णता को शिथिल करने के लिए आघात पर आघात किए। उनका समस्त जीवन मानव को उसकी महिमा के प्रति सचेतन करने का प्रयास है। विश्वकवि रवींद्रनाथ टैगोर के १५० वें जयंती वर्ष पर लेखक उनके काव्य की विशेषता बता रहे हैं।

विश्व-विभूति रवींद्रनाथ टैगोर (1861-1941) वास्तव में एक संवेदनशील कवि, नाटककार, कहानीकार, निबंधकार, अभिनेता, संगीतकार, शिक्षक तथा स्वतंत्रता संग्राम सेनानी थे। आधुनिक चित्रकला के उन्नायकों में वह प्रमुख हैं। मूर्त और अमूर्त कला के भंडार को भरने में उनकी भूमिका सराहनीय है। भारत में वर्ष 1913 में सर्वप्रथम गीताजलि (काव्यकृति) पर विश्वोत्तम 'नोबेल पुरस्कार' प्राप्त रवींद्र को महात्मा गांधी ने गुरुदेव की संज्ञा दी थी। शांति निकेतन (बोलपुर, पश्चिम बंगाल) भारतीय शिक्षण पद्धति पर आधारित शिक्षा केंद्र उनकी स्मृतियों के रचयिता के रूप में वह अमर हैं। वह जन्मजात कवि थे। आठ वर्ष की आयु से वह कविता लिखने लगे। अपने सत्तर वर्ष के काव्य-लेखन काल में लिखी गई उनकी कविताएं विश्व की सर्वोत्तम साहित्य-संपदा स्वीकार की गईं।

रवींद्र भारतीय अस्मिता, प्रखरता, सांस्कृतिक गरिमा और औदार्य के कवि हैं। मानवीयता, राष्ट्रीयता एवं सहजता उनके काव्य का प्रमुख स्वर है। जीवन के प्रति उनकी आश्वस्त सूर्योदयी तेजस्विता की प्रतीति है। भारतीय स्वाधीनता संग्रामियों को प्रेरणा और प्रोत्साहन देने वाले विश्वकवियों में वह अकेले और अद्वितीय हैं। वह अति सहज भाव से निम्न पंक्तियों में उन्हें बार-बार स्मरण दिलाते हैं—इन अभागे देश में, हे नाथ मंगलमय/करो तुम दूर सब भवजाल ओछे/छिन्न कर दो लोक से, नृप से, मरण से भीति का जंजाल चूर्ण-विचूर्ण कर दो, रुद्र: वह पाषाण का-सा भार/दुर्बल-दीन स्कंधारूढ़ चिरपेषण व्यथा की मार/यह कठिन अपमान अपना ही निमेष-निमेष/यह दासत्व की शृंखला भीतर और बाहर की/सदा उतरे हुए करना प्रणति शत-शत पदों की/यह सुचिर अपमान मानव दर्प का/हम गर्व मर्यादाजनित चित्रकार/लज्जाराशि वृहदाकार/कर दो चूर्ण ठोकर मार/दो अवसर कि शुभ प्रत्यूष वेला में उठाए सिर/ग्रहण कर सकें श्वास मुक्त बयार में/लग्न सकें यह निःस्पीम परम व्योम का आलोक-दृष्ट

अशोक।

इस प्रकार कवि की उपर्युक्त ध्वनि गूंजी कि बंधन बाहर का नहीं, भीतर का है। वह जो पद-पद का भय है, लोक से, परलोक से, राजा से, मुसाहिब से, मरण से, दारिद्र्य से बार-बार भीत होना है, यही हमारी सबसे बड़ी समस्या है। वह स्पष्ट कहते हैं वह जो भीति का जंजाल है वह छिन्न हो जाए; मनुष्य की हीन वीर्य जो अवनति है, वह दूर हो जाए; भीतर का जो मनोकथन है, वह कट जाए।

गुरुदेव को मानव की जययात्रा पर अखंड विश्वास है। वह युगद्रष्टा हैं और जीवन की उच्छल प्राणधारा में अडिग विश्वास की छवि देखते हैं। यही है उनके विश्व-साहित्य के महान रचनाकार का चिंतक-स्वरूप जो इन पंक्तियों में देखा जा सकता है—आकाश में प्रकाश रूपी/कमल खिला है/इसकी किरणें फूट-फूटकर/सब दिशाओं में बिखर गई हैं/अंधकार के काले भंवर/पानी लेने चले गए हैं/पुष्प के मध्य भाग में/स्वर्ण का कोष है/मैं वहां आनंद में बैठा हूँ और/प्रकाश-पद्म का पराग/बिखेर रहा हूँ/आकाश में तरंग उठी है/पवन में पुलक है/चारों ओर से गीतों की/लहरें उमड़ रही हैं/चारों ओर से प्राणों का नृत्य/फूट पड़ा है और आकाश में भर गया है/इस प्राण-सागर में गोता लगाने को/मैं अपने वक्ष में प्राण भर रहा हूँ/मेरा मन भी गीतों से और गंध से/भर-भर गया है और/मैं बड़े आनंद से/स्वर्ण कोष में बैठा हूँ/पृथ्वी ने मुझे घर में अपना/आंचल पसारकर बुलाया है/और हृदय में बिठाया है/मैं तुझे नमस्कार करता हूँ/मेरा विषाद नष्ट कर/मेरे समस्त शरीर पर/अपना वरद हाथ रख/भू-माता! मैं तुझे नमस्कार करता हूँ/मेरे समस्त मनोरथ पूर्ण कर।

(16)

विश्व-साहित्य के गौरव रवींद्रनाथ में प्रकृति और मनुष्य के रागात्मक संबंधों का अक्षय वैभव समाया है। उनकी कविताएं मानव की अंतश्चेतना का सहज स्पर्श कर उसे दिव्य प्रकाश से आलोकित करती हैं। उनकी कविता में वसंत का स्वर्णकाल, शांत पुष्पों-भरा वन-सौंदर्य, जीवन के आठों प्रहरों का अचेतन अट्टहास अभिव्यक्त हुआ। उनकी देशभक्ति असंदिग्ध रूप से भारत माता का शाश्वत अभिनंदन है। कवि की 'दिव्य स्वातंत्र्य' रचना में जागरण का निम्न स्वर प्रस्फुटित हुआ है—जहां हृदय में निर्भयता है/और मस्तक अन्याय के/सामने नहीं झुकता/जहां ज्ञान का मूल्य नहीं लगता/जहां संसार घरों की संकीर्ण/दीवारों में खंडित और/विभक्त नहीं हुआ/जहां शब्दों का उद्भव केवल/सत्य के गहरे स्रोत में होता है/जहां अनर्थक उद्यम/पूर्णता के आलिंगन के लिए ही भुजाएं/पसारता है/जहां विवेक की निर्मल/जलधारा पुरातन रूढ़ियों के/मरुस्थल में सूखकर लुप्त नहीं हो गई जहां मन तुम्हारे नेतृत्व में सदा उत्तरोत्तर विस्तीर्ण होने वाले/विचारों में कर्मों में रत रहता है। प्रभु! उस दिव्य स्वतंत्रता के प्रकाश में मेरा देश जाग्रत हो।

टैगोर आकाश और पृथ्वी को मिलाने की अद्भुत शक्ति रखते हैं। काल के प्रति उनका चिंतन अनुपम है। समय चलायमान है, रुकता नहीं है। कवि प्राण की उच्छल धारा से मृत्यु की काली छाया को हटाना चाहता है और समस्त विकृतियों के नाश का याची है। इस विश्व में यही विजय पताका फहराता है जो मिट्टी से संबद्ध है, प्राण शक्ति से समन्वित है। कवि की अभिव्यक्ति प्राणधारा की शक्ति का निनाद करती है—अलग समय की धारा में बहता हुआ मन शून्य की ओर झांकता हुआ चला जा रहा है। उस महाशून्य के मार्ग में छाया के अंकित चित्र दिखाई दे रहे हैं। जमाने से दल के दल जन-समूह सुदीर्घ अतीतकाल से जयोद्धत प्रबल मति से आए हैं/ और चले गए हैं। आए हैं साम्राज्य लोभी पठान/आए हैं मुगल उनके विजय रथ का पहिया धूल उड़ाता रहा। उनकी विजय पताकाएं फहराती रही हैं। सूने मार्ग की ओर देख रहा हूं। आज उनका कोई चिन्ह नहीं है। युग-युग में प्रभात और संध्याकालीन सूर्योदय और सूर्यास्त के रंगीन-प्रकाश उस निर्मल नीलिमा में दमकते रहते हैं। दूसरी बार, उसी शून्य के नीचे आए हैं झुंड के झुंड लौहबद्ध मार्ग से अनल-निश्वासी रथ पर प्रबल अंग्रेज विकीर्ण कर दिया है अपना तेज जानता हूं काल उनके रास्ते में भी निकल जाएगा वे काम करते हैं पंजाब में, बंबई में, गुजरात में उनके गुरु गर्जन और उनके गुणगुन स्वर दिन-रात में गुंथे रहकर नित यात्रा को मुखरित किए रहते हैं। मंत्रित कर डालते हैं। जीवन के महामंत्र की ध्वनि को सौ-सौ साम्राज्यों के भग्नावशेष पर वे काम किए जा रहे हैं।

कवि रवींद्र का रहस्यपूर्ण काव्य-संसार अलौकिक है। एक बच्चा निम्न पंक्तियों में अपने इस संसार में आने की बात बड़ी सहजता से करता है—

पूछा शिशु ने मां से-मां ! मैं आया बता कहां से?
 अथवा बता कि तू है लाई मुझको उठा कहां से?
 हंसकर बोली मां, शिशु को निज छाती से लिपटाकर-
 बेटा, तू रहता मन में था मेरी इच्छा बनकर।
 यौवन के उपवन में जब यह हृदय सुमन था फूला
 सौरभ-सा वन मेरे उर में तू सुख से था झूला।
 'माटी-मंदिर' टैगोर की सर्वाधिक चर्चित रचना है जिसमें वह भक्त के पूजन-
 आराधन से अलग हटकर कृषक एवं श्रमिक में भगवान के दर्शन पाते हैं:-
 प्रभु तो वहां जहां मिट्टी को कृषक स्वेद से सींच रहा।
 शिला तोड़कर श्रमिक जहां पर पथ की रेखा खींच रहा।
 प्रभु के हाथ सने माटी में, सुन रे! कर्म पुकार रहा

पाठंबर-आडंबर तजकर, स्वेद-सलिल में समुद्र नहा।
 छोड़-छोड़ यह ध्यान, फूल भी रहने दे तू पड़े उधर
 वस्त्र फटेंगे, हाथ सनेंगे, मिट्टी में, मत चिंता कर।
 कर्म योग में साथ सभी का, देकर श्रम-जल सिंचन
 छोड़-छोड़ रे! पूजन, साधन, और आराधन।

रवींद्रनाथ प्रकृति-जगत के अद्भुत चितरे हैं। वह पेड़-पौधों, नदी, समुद्र, वसंत, पावस, शिशिर, कोकिल, पुष्प आदि का वर्णन करने में प्रवीण हैं। उनकी 'कोकिल' शीर्षक कविता में कवि कोकिल की अतीत स्मृतियों में खो जाता है—

संध्या समय कूक कोयल की/सुनकर लगा आज इस मन को
 माना पहुंचाया अतीत ने/वर्ष तीन सौ पहले जग को
 संध्या समय छतों के ऊपर दक्षिण-पवन मंद हो बहता
 बैठ तारकों के प्रकाश में कौन पुराण कथा है कहता?
 फूलों की बगिया में रह-रह/ गंध हिना की उझक रही है
 ऐसे समय बांधकर जूड़ा/दृग में काजल वधू लगाती
 बीच-बीच में वकुल-विपिन से/कोकिल पंचम तान सुनाती।

(17)

रवींद्र वास्तव में कवि कुल गुरु थे। वह अपनी जीवन-यात्रा को नवीनता की संज्ञा नहीं देते। वह चिरकाल तक जाने की बात करते हैं—

कवे आमि बाहिर हलेम तोमारि गान गये
 से तो आज के नय, से तो आज के नय
 ओ रे मांझी, ओ रे आमार मानव-जीवन-तरीर मांझि
 सुनते कि पास दूरे थेके पाटेर बांशि उठछे बाजि!

(अरे मल्लाह, अरे ओ मेरे मानव जीवन की नैया के मल्लाह, क्या तू सुन रहा है, दूर से उस पार की वंशी बज रही है।)

कवि की यात्रा उद्देश्यपूर्ण है। सुदूर से वंशी की पुकार हो रही है। यात्रा निडर है—यात्री आमि ओरे पारवे ना केउ रालते ओमाय थरे।

रवींद्रनाथ महामानव थे। उनकी वाणी समूची मानवता के उत्कर्ष का पर्याय थी। उन्होंने नाना प्रकार से मानवीय संकीर्णता को शिथिल करने के लिए आघात पर आघात किए। उनका समस्त जीवन मानव को उसकी महिमा के प्रति सचेतन करने का प्रयास है।



वास्तविक क्रांति

महाप्रज्ञ

अब तक जितनी भी क्रांतियां हुई हैं, वे मानवीय उत्पीड़न और शोषण को प्रतिक्रिया में हुई हैं। इसलिए इनको मैं प्रतिक्रियात्मक क्रांतियां मानता हूँ। क्रियात्मक क्रांति अभी नहीं हुई है। सत्ता और अर्थ का रूपांतरण होने पर भी मनुष्य का पुनर्मूल्यन नहीं हुआ है। आज भी सत्तारूढ़ व्यक्ति का वही मूल्य है, जो एक राजा का था। मूल्य सत्ता को प्राप्त है, मनुष्य का स्वतंत्र मूल्य नहीं है।

आज भी एक कर्मचारी को अधिकारी के सामने यह अनुभूति नहीं होती कि मैं उसके जैसा ही मनुष्य हूँ। क्षमता और कार्य के भेद ने मनुष्यता को भी विभक्त कर रखा है। व्यवस्था के तंत्र में जो मानवीय एकता की अनुभूति होनी चाहिए यह विकसित नहीं है। इसलिए मानवता अखंड नहीं है। इस खंडित मानवता से ही अनेक विकृतियां और बुराइयां उत्पन्न हो रही हैं। इसी से हिंसा का दौर बढ़ जाता है।

क्रांति की मेरी परिभाषा है-सामाजिक धारणाओं, व्यवस्थाओं और व्यवहारों का पुनर्जन्म। उसका सूत्रधार है मनुष्य। जब-जब मनुष्य का नया जन्म होता है, तब-तब नए प्रश्न उपस्थित होते हैं। आज का नया प्रश्न है-हम क्या करें। इसका नया उत्तर है-जो सूझे, वह करें। कम-से-कम इतना ध्यान अवश्य रखें कि आपके ही समान सुख-दुख की अनुभूति वाले सामाजिक प्राणी के हितों की बलि चढ़ाकर अपने हितों का प्रासाद खड़ा न करें।

राजनीतिक क्रांति द्वारा सत्ता और अर्थ के स्थानों में परिवर्तन हुआ है। सत्ता उच्च वर्ग के हाथों से खिसक कर उस वर्ग के हाथ में आ गई है, जो शोषित था। अर्थ का अधिकार व्यक्तिगत क्षेत्र से हटकर सामुदायिकता के क्षेत्र में चला गया। यह परिवर्तन कोई कम नहीं है। पर मानवता के स्तर पर यह अंतिम नहीं है। विकास की संभावनाएं अभी बहुत शेष हैं। समाज का प्रमुख घटक है-मनुष्य। मानवीय स्तर पर अभी बहुत कम परिवर्तन हुआ है।

साधारणतया सत्य का अर्थ है-सत्य, यथार्थ या परमार्थ। जो है, वह सत्य है। यह सत्य की स्वभावगत व्याख्या है। जो यथार्थ है, वह सत्य है-यह सत्य की

आचारात्मक व्याख्या है। सत्य और यथार्थ दर्शन के विषय हैं। स्वभावगत सत्य सदा सत्य रहता है। वह कभी असत्य नहीं होता।

कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं, जो सत्य को जानते नहीं। कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं, जो सत्य को जानते हैं, पर उसमें उनकी, श्रद्धा नहीं होती। कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं, जो सत्य को मानते हैं, उनमें उनकी श्रद्धा भी होती है, किन्तु उसका आचरण नहीं कर पाते। कुछेक में आचरण की शक्ति का थोड़ा विकास होता है, वे मिथ्या वचन या असत्य को श्रेष्ठ नहीं मानते, किन्तु मानसिक दुर्बलतावश उसे छोड़ने में अपने को असमर्थ पाते हैं।

सम्पर्क F सहयोग F संस्कार F सेवा F समर्पण

(18)

पढ़िये और पढ़ायें तथा भेंट करें

GYAN PRABHA (QUARTERLY)

ज्ञान प्रभा

त्रैमासिक

22

आगामी अंक
कारपोरेट जगत का सामाजिक
उत्तरदायित्व

त्रैमासिक ज्ञान प्रभा के
आजीवन सदस्य बनें।

सहयोग राशि वार्षिक

100/-

आजीवन 1500/-

भारतीय संस्कृति के सनातन सन्देश

- डा० रामकरण शर्मा

भारतीय संस्कृति की जड़ें बड़ी गहरी हैं-इसका विशाल वृक्ष परिवार रूपी मूल पर टिका हुआ है। हमारी संस्कृति परिवार, परिवार के विभिन्न सदस्यों, समाज, समाज के विविध अंगों तथा उनके कर्तव्यों का बड़ा सांगोपांग चित्रण प्रस्तुत करती है। मैं एक छोटे से प्रसंग से अपनी बातों का श्रीगणेश करना चाहूंगा। आज से लगभग पन्द्रह-बीस वर्ष पहले हमलोग एक विदेशी राजदूत के यहां निर्मात्रित थे। वहां पर राजदूत की धर्मपत्नी ने हमसे एक प्रश्न पूछा कि-“शर्माजी ! आपके देश की पारिवारिक व्यवस्था ठीक-ठीक चल रही है या वह व्यवस्था भी हमारी (पाश्चात्य) पारिवारिक व्यवस्था का अनुकरण कर रही है?” उनका प्रश्न बड़ा सीधा-साधा था, मेरा उत्तर भी वैसा ही होना चाहिए था और वह इस प्रकार था-“बड़े-बड़े शहरों में तो वह कुछ बिखर रही है, लेकिन अभी भी हमारा समाज और हमारा परिवार अपनी संस्कृति के पुराने तत्वों को अक्षुण्ण बनाये हुए है।” राजदूत की धर्मपत्नी मुझसे कहने लगीं “शर्माजी, इस भारत देश की पारिवारिक व्यवस्था को कभी टूटने मत देना। भारत देश के पास अगर कोई ऐसी चीज है जो यह सारे विश्व को यदि दे सकता है तो वह इसकी पारिवारिक व्यवस्था है। पारिवारिक ढांचा बिखर गया तो इस देश के पास और कुछ ऐसा नहीं जो दुनियां को देने लायक हो।” ये उद्गार थे एक समृद्धतम देश के राजदूत की धर्मपत्नी के, और उनकी आंखों के आंसू उनकी अनुभूतियों को हमारे सामने प्रकट कर रहे थे।

वस्तुतः हमारी संस्कृति का श्रीगणेश यहीं होता है। सच पूछिये तो हमारी संस्कृति भी बड़ी-बड़ी बातें अवश्य करती है लेकिन कोई भी बड़ी बात तबतक पूरी नहीं हो सकती जबतक व्यक्ति ठीक न हो। यदि हम सचमुच अपनी संस्कृति की रक्षा करना चाहते हैं तो हमें परिवार से प्रारम्भ करना होगा, तभी हम अपने समाज के प्रति और राष्ट्र के प्रति ईमानदार बन सकते हैं। यदि हमारा परिवार टूट गया, और ‘मातृदेवो भव’, ‘पितृदेवो भव’, ‘आचार्यदेवो भव’ की परम्परायें अगर नष्ट हो गईं-तो भारतीय संस्कृति की जड़ें मुरझा जायेगी। हमारे यहाँ माता-पिता के लिए सब कुछ करने को तैयार रहता है। यहां तक कि तुलसीदास जी कहते हैं कि अगर तुम पुत्र हो और तुम्हारे पिता कुछ बात कहते हैं तो कुछ सोचो मत, तुरन्त मान लो। उसके बाद तर्क भले ही करो, लेकिन मानने में विलम्ब न करो।

इसलिए हमारे देश का जो पारिवारिक ढांचा जीवन का ‘अमृत’ है, उसको यदि हमने बचा लिया तो मानो सबकुछ बचा लिया। इसमें किसी को कुछ मिटाने की आवश्यकता नहीं है, अपने अधिकारों को छोड़ने की भी आवश्यकता नहीं है, केवल सहज अनुराग का, स्नेह का जो बन्धन है, उस बन्धन को अक्षुण्ण रखने की आवश्यकता है। अतः आज के परिप्रेक्ष्य में हम भारतीय संस्कृति पर जो विचार करें, उसके मूल में पारिवारिक व्यवस्था पर हमारा सबसे अधिक ध्यान जाना चाहिए। ऊपर एक विदेशी महिला के जिस प्रश्न की चर्चा मैंने की है, उसका उत्तर तो मैंने ऊपरी तौर से दे दिया किन्तु ईमानदारी की बात यह है कि भारतीय संस्कृति में जो पारिवारिक व्यवस्था का सुदृढ़ बन्धन था और जिस बन्धन में हमारी पारिवारिक व्यवस्था इतनी पुष्ट और स्थायी थी, अब धीरे-धीरे उसकी स्थायिता नष्ट हो रही है, आधुनिकता के नाम पर हमारे पारस्परिक सम्बन्ध नष्ट हो रहे हैं। हमारे परिवारों में भी अब शायद कुछ वर्षों तक एक-दूसरे को देखने वाले भी नहीं बच जायेंगे, न नसीहत देने वाले वृद्ध वहां रहेंगे और न वृद्धों की सेवा करने वाले बच्चे सुलभ होंगे। आज हमारा दायित्व है कि हम वैसी स्थिति न आने दें। आज के भारत के लिए हमारी संस्कृति का सबसे बड़ा सन्देश यही है।

(19)

हमारी भारतीय संस्कृति की यह विशेषता यही है कि यहां परस्पर विरोधी भावनाओं को एक साथ प्रश्रय मिला है। भगवान् शिव स्वयं इस बात के प्रमाण हैं। भगवान् शिव के शरीर में एक तरफ अमृत है तो एक तरफ विष। दुनियां अमृत के लिए लालायित रहती है, किन्तु शिवजी को कहीं से अमृत ढूँढने की आवश्यकता नहीं है। दुनियां में जब विष फैलने लगता है तो शंकरजी दुनियां के कल्याण के लिए उस विष को भी पी जाते हैं। वे कला के भी वैसे ही कलाकार हैं, उनका सब कुछ अमंगलमय है, श्मशान में रहते हैं, लेकिन वह सब होते हुए भी मंगलमय हैं। हमारी संस्कृति का रूप भी भगवान् शिव के स्वरूप की तरह कुछ ऐसा ही है। कोई भगवान् पर विश्वास करता है तो हमें उस पर भी कोई आपत्ति नहीं, वह भी हमारा अपना है। लेकिन उसका आचरण कैसा है, इसमें हम सन्धि नहीं करते, उसमें समझौते की कोई संभावना नहीं। आचरण की दृष्टि से हमारे यहां तीन काण्ड माने गये-ज्ञानकाण्ड, कर्मकाण्ड और उपासनाकाण्ड। ये तीनों हमारी संस्कृति के तीन दण्ड माने जा सकते हैं, जिनपर हमारी संस्कृति टिकी हुई है। ज्ञान भी आवश्यक है, कर्म भी आवश्यक है और उपासना भी आवश्यक है।

इसी भाँति ज्ञान के क्षेत्र में भी ज्ञान के अलग-अलग पक्ष और पृथक्-पृथक् स्वरूप हो सकते हैं। कोई व्यक्ति कहेगा-अद्वैत ही सत्य है, कोई कहेगा कि द्वैत ही

मान्य है और कोई तीसरा कहेगा कि नहीं, बहुदेवतावाद ही अन्तिम है—इन विचारधाराओं से कोई फर्क नहीं पड़ता। एक तरफ तो ऋग्वेद के समय ही कह दिया गया कि देवता अनेक होते हुए भी एक ही हैं और अगर एक ही हैं, तो भी अनेक का खण्डन नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए एक वृक्ष है, उसकी जड़ भी एक है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह जड़ न हो, वह मूल न हो तो वह वृक्ष भी नहीं रहेगा। लेकिन वह मूल बराबर अव्यक्त रहता है। कोई भी चीज कभी सफल नहीं हो सकती जबतक कि वह अव्यक्त न हो जाये; बीज सच्चे अर्थमें बीज तभी बनता है जब आंखों से ओझल होता है। आंखों से ओझल हुए बिना तो बीज ऐसे ही पड़ा रहता है, चाहे आप उसे अलमारी में रखिये, चाहे बीजालय में—उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। आंखों से ओझल होने के बाद ही उसमें अंकुर फूटता है और बढ़ते-बढ़ते उसकी शाखायें विकसित होती हैं, पौधा बढ़ता है, उसमें पत्ते आते हैं, फूल और फल आते हैं।

भारतीय संस्कृति का जीवन-दर्शन कहता है कि जो ढांचा विश्व का है, वही ढांचा समाज का है और जो विश्व का स्वरूप है, वही प्रत्येक व्यक्ति का स्वरूप है जिसको बंगला में इस प्रकार कहा जाता है—

**जो पिण्डे सोई मुण्डे।
जोई ब्रह्माण्डे सोई पिण्डे॥**

तो जो व्यक्ति है, वह वस्तुतः पूरे विश्व का, पूरे ब्रह्माण्ड का प्रतीक है, विश्व की सारी चीजें इसमें हैं। यदि आयुर्वेद की दृष्टि से हम अपनी देह का विश्लेषण करें तो प्रत्येक व्यक्ति में तीन मुख्य तत्त्व होते हैं—वात, पित्त और कफ; ये तीनों परस्पर विरोधी होते हैं, उनका बराबर युद्ध चलता रहता है। भाव यह है कि हमारे शरीर में यह लड़ाई लगातार चलती रहती है और हमारे मन में काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य—इन वृत्तियों का संघर्ष सतत होता रहता है। बराबर हमें चिन्तन करना पड़ता है कि क्या करें, क्या न करें, यह काम किया जाये या न किया जाये।

इस प्रकार हमारी संस्कृति में एक समन्वयवाद है जिसमें ज्ञानकाण्ड भी है, उपासनाकाण्ड भी और कर्मकाण्ड भी। तीनों में समान रूप से तालमेल होना जरूरी है, इन तीनों में से एक के भी टूटने पर हमारी संस्कृति बिखर जायेगी, टूट जायेगी—इसलिए इन तीनों काण्डों पर ध्यान रखने की आवश्यकता है। इनके बाहरी रूपों में तो परिवर्तन होते रहेंगे—हमारे कर्म भी भिन्न-भिन्न होंगे, उपासनायें भी भिन्न-भिन्न होंगी, ज्ञान की प्रक्रियायें भी भिन्न-भिन्न होंगी, लेकिन अलग-अलग होते हुए भी ये एक-दूसरे की पोषक हैं; ज्ञान कर्म का पोषण करेगा, कर्म ज्ञान का पोषण करेगा और उन दोनों की चरम परिणति उपासना में होगी।

(20)

हमारी संस्कृति युग के अनुसार और देश के अनुसार बदलती रही है जिसको कि मनुस्मृति में स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया गया है। वहां कहा गया है कि अगर एक तरफ धर्म है और दूसरी तरफ अर्थ है और अर्थोपार्जन के लिए हमें अधर्म करना है या धर्म का परित्याग करना है तो हम धर्म का परित्याग नहीं करेंगे, अर्थ का ही परित्याग कर देंगे और अपना धर्म कायम रखेंगे—

परित्यजेद् अर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ।

हम झूठ बोलकर, बेईमानी करके अर्थोपार्जन नहीं करेंगे। अगर एक तरफ किसी किसी पद को या अन्य वस्तु को प्राप्त करने की अभिलाषा है और दूसरी तरफ धर्म है तो हम अधर्म करके उस कामना की पूर्ति नहीं करेंगे। हम वहां पर उस कामना का परित्याग करेंगे और अपने धर्म को सुरक्षित रखेंगे। लेकिन ऐसी भी स्थिति आ सकती है जब हमें धर्म का भी परित्याग करना पड़े। इसके लिए मनु भगवान् ने कहा है कि यदि वह धर्म समय के अनुरूप नहीं है, यदि उसका परित्याग समाज और राष्ट्र के लिए ठीक नहीं है तो ऐसे धर्म का परित्याग करने के लिए हमें सदा तैयार रहना चाहिए। जहां पर धर्म और अर्थ में या धर्म और काम में विरोध हो, वहां पर काम छोड़ देना चाहिए, यहां तक तो ठीक है किन्तु—

धर्मं चाप्यसुखोदकं लोकविसृष्टमेव च।

अर्थात् जिस धर्म का परिणाम व्यक्ति और समाज के लिए या राष्ट्र के लिए और विश्व के लिए अच्छा न हो तथा लोक जिस धर्म को स्वीकार न करता हो, ऐसे धर्म का भी परित्याग करना चाहिए—यह हमारी संस्कृति का सन्देश है। हमारी संस्कृति परस्पर विरोधी व्यक्तियों, परस्पर विरोधी संस्कारों, परस्पर विरोधी उपासना-पद्धतियों को आत्मसात् करते हुए, उनका सम्मान करते हुए, अपनी अस्मिता की सुरक्षा में विश्वास करती है और उसके लिए समन्वय का मार्ग सुझाती है। वह समन्वय का मार्ग है पुरुषार्थ का मार्ग—**धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष**—इन चारों लक्ष्यों में, समन्वित सन्तुलन ही भारतीय संस्कृति का सनातन सन्देश है जो आज भी सर्वथा प्रासंगिक है।

□

बुद्ध उचाव

न यज्ञ से कुछ होता है और न ही धार्मिक किताबों को पढ़ने मात्र से। धर्म की किताबों को गलती से परे मानना नासमझी है। पूजा-पाठ से पाप नहीं धुलते।
जैसा मैं हूँ, वैसे ही दूसरा प्राणी है, इसलिए न किसी को मारो, न मारने की इजाजत दो।

भगवा भारत का अन्तर्मन है :

हृदयनारायण दीक्षित

भगवा भारत का पर्यायवाची है। भा का अर्थ प्रकाश है। आभा में भा दीप्ति है। भाषा में भा वाणी का प्रकाश है। प्रभा में भी भा दीप्ति वाचक है। रत का अर्थ संलग्न होता है। सो भारत का अनुभूत अर्थ है-प्रकाश संलग्न अंतर्मन त्यागी है। दीप स्वयं जलता है, स्वयं के अधंकार की परवाह नहीं करता लेकिन तमस्-अंधकार से लड़ता है। तमस् से लड़ते समय उसकी ज्योति का रूप रंग भगवा हो जाता है। भारत और भगवा ज्योतिर्वाची है। वैदिक ऋषि 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' के प्रार्थी थे। भगवा ज्योतिर्वाची है। वैदिक ऋषि 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' के प्रार्थी थे। भगवा भारत की प्रकृति और संस्कृति है। भगवा स्वभाव है, भाग्य संभावना है, भगवान परम् लक्ष्य है। यहां भगवान 'ज्योतिर्गमय' अभीप्सा के ही चरण हैं। भगवा बीज है। हरेक बीज में अनंत संभावनाएं हैं, वह भविष्य का पौधा है, सुरभित पेड़ है, ढेर सारे फूलों से लदा फंदा वृक्ष है। वह फिर नये बीज देने की संभावनाओं से भी लैस है। बीज का परिपूर्ण वृक्ष बनना भाग्य है, सड़कर नष्ट हो जाना, वृक्ष न बन पाना दुर्भाग्य है और चहचहाते पक्षियों के बसेरे वाला हरा भरा, फूलों-फलों से लदा वृक्ष बन जाना सौभाग्य संभावना है, भगवा इस संभावना का उत्प्रेरक है। भगवान हो जाना परम अभीप्सा है।

लेकिन भारत के दुर्दिन हैं कि कुछ लोगों ने भारत के भारतीयता के पर्यायवाची भगवा को आतंकवाद से जोड़ा है। बेशक वे दया के पात्र हैं, लेकिन क्षमा के योग्य नहीं। उन्होंने भारत की सनातन प्रज्ञा को गाली दी है। अगवा भारत का अन्तर्मन है। अन्तर्मन का निर्माण अनुभूति से होता है। अनुभूति का कोई रूप नहीं होता इसलिए चीख, पुकार, प्रीति और प्यार को देखा नहीं जा सकता। भगवा त्यागी चित्त का उल्लास है, अहंशून्यता का आनंद है, शून्य से विराट हो जाने का उत्सव है। वैदिक दर्शन में सृष्टि के सभी रूपों में एक ही सत्ता की अनुभूति है। कठोपनिषद् (5.9) के ऋषि ने अग्नि के बारे में कहा, अग्रियथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव-अग्नि सभी पदार्थों के भीतर है, वही प्रत्येक रूप में प्रत्यक्ष है। ऋग्वेद (10. 36.14) के ऋषि ने यही अनुभूति सविता (सूर्य) में पायी, सविता पीछे है, सविता सामने है, सविता ऊपर है, सविता नीचे है। हे सविता हमें समृद्धि दे, दीर्घायु दे। वेदों को श्रुति कहा जाता है लेकिन वैदिक मंत्रों में सारा जोर देखने पर है। ऋषि मंत्र देखते

हैं, वे मंत्र दृष्टा हैं, मंत्र रचयिता या गायक नहीं। देखने की अपनी शैली है, देखकर अनुभूति तक जाना आसान नहीं होता। लेकिन अग्नि और सूर्य नित्य प्रति दिखाई पड़ते हैं। सो ऋषियों के भाव बोध में उनकी खासी महत्ता है।

अग्नि का दर्शन वैदिक ऋषियों की प्रीतिकर अनुभूति है। ऋग्वेद अग्नि की स्तुति से ही शुरू होता है-अग्नि मीडे पुरोहितं, होतार रत्न धाततम्-अग्नि पुरोहित है, रत्नदाता है। पूर्वकाल ऋग्वेद से भी पुराना है। ऋग्वेद (3.7.1) में कहते हैं, अग्नि की ज्वालाएं उठती हैं, वे मातृ-पितृ द्यावा पृथ्वी और सात वाणियों में प्रविष्ट हैं। अग्नि का देखा गया रूप ज्वाला है, स्वाभाविक ही इसका रूप रंग भगवा है। अनुभूति में वे पृथ्वी अंतरिक्ष तक व्यापक है लेकिन वाणी के सात सुरों में भी अवस्थित है। एक बहुत बड़े देवता हैं-अदिति। वे संपूर्ण ब्रह्माण्ड को घेरते हैं। ऋषि उनके दर्शनाभिलाषी है, उनका प्रश्न (1.24.1) है कि हम किस देव का ध्यान करें जो अदिति का दर्शन करवा दें। अगले मंत्र में उत्तर है हम प्रथम देव अग्नि का ध्यान करें। अग्नि का ध्यान भगवा है। वेदों में अग्निविषयक 2483 मंत्र हैं। सिर्फ ऋग्वेद में ही अग्नि स्तुति के 200 सूक्त हैं। अग्नि ऊर्जा है। अग्नि सर्वव्यापी है, सबसे ऊपर द्युलोक में, फिर अंतरिक्ष में और नीचे पृथ्वी में भी। (ऋ. 2.1.3) इसी मंत्र के अनुवाद की टिप्पणी में ग्रिप्थ कहते हैं, सबसे ऊपर यही अग्नि सूर्य हैं, अंतरिक्ष में विद्युत है और धरती पर यज्ञ है। यहां एक ही अग्नि तीन रूपों में है। तीनों का रूप रंग भगवा है।

सविता-सूर्य का ध्यान प्रातः होता है, सायं होता है। दोपहर या रात में नहीं होता। उगता और विदा होता सूर्य भगवा है। सूर्य उपासना प्राचीन यूनान में भी थी। प्लेटो ने 'रिपब्लिक' में यह बात बताई है। ऋग्वेद में सविता के 10 सूक्त है लेकिन 20 सूक्त ऊषा के हैं। ऋग्वेद में सूर्य को ब्रह्माण्ड की आत्मा जगत 'स्तस्थुषश्च' बताया गया है। प्रश्नोपनिषद् (1.5) में कहते हैं, आदित्यो ह वै प्राणो। लेकिन सूर्योदय के पहले आने वाली ऊषा के स्वागत में क्षितिज भगवा हो जाता है। वे भग और वरुण की बहिन है (ऋ. 1.123.5) यहां भग ऐश्वर्य है और वरुण शासक। परम ऐश्वर्यवाची-भग की प्रतीति ही भगवा है। भगवा प्रकाश किरणों के मूल 7 रंगों से पृथक है। यह पीला है, लाल है, लेकिन दोनों से असंबद्ध-संन्यासी भी है। कर्तापन और भोक्तापन का नाम संसार है। दोनों का सुख-दुख भोगते हुए अनासक्त, असंबद्ध हो जाना भगवा है, अंतस तल पर यही आचरण भगवद् है।

भारतीय दर्शन में यह सृष्टि एक है, अद्वैत है, दो नहीं है। आधुनिक विज्ञान ने भी प्रकृति को एक इकाई माना है। भारत ने इसे ब्रह्माण्ड कहा, आधुनिक विज्ञान ने 'कास्मिक ग'। संपूर्ण सृष्टि का एकीकृत स्वभाव है, बुझती है, व्यक्त होती है,

शेष पृष्ठ 57 पर.....

विज्ञान भी मानता है अब ध्यान के महत्त्व को

महात्मा गौतम बुद्ध ने एक बार अपने शिष्यों से कहा—“भिक्षुओं ! अपने अंदर देखना सीखो। बाहरी शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध का तुम्हें बहुत अनुभव है। इन अनुभवों से तुम कुछ भी न पा सके, कहीं विश्राम और शांति न पा सके, अब बाहर की दौड़ बंद करके अंतः के दर्शन करो।” सामान्यतः हमारे आंतरिक विचारों एवं बाहरी क्रियाकलापों में अंतर पाया जाता है—सोचते कुछ हैं, भावनाएं कुछ और ही हैं। इन अंतरों को ही शास्त्रों की आलंकारिक भाषा में अविद्या अथवा भवसागर कहा गया है। वास्तविकता को जाने बिना अविद्या की तमिन्ना से निकलना संभव नहीं। भवसागर को पार करना इसीलिए कठिन लगता है कि हम सत्य से अनभिज्ञ बने रहते हैं।

योग-साधनाओं का मूल प्रयोजन मनुष्य को अंतर्वर्ता बनाना है। संक्षेप में इसे ही अध्यात्म कहते हैं। दूर से दूर की वस्तु को समीपतम वस्तु के माध्यम से देखा जा सकता है। संत इमर्सन कहा करते थे—“विराट जगत और नितांत एकांत, जब अपना अंतःकरण अपने आप तक को स्वीकार करने लगे, दोनों ही परिस्थितियों में मुझे बहुत भय लगता है—इससे मैं अनुभव करता हूँ कि दोनों में कहीं न कहीं सादृश्य हैं। लघुतम में विराट के दर्शन का सिद्धांत विज्ञान ने शरीर संरचना की इकाई कोश (सेल) के विशद अध्ययन से सिद्ध कर दिया है। विराट को जाने बिना मनुष्य का अज्ञान नष्ट नहीं होता। अज्ञान सबसे बड़ा दुःख है। विराट को जानने की क्रिया को ही अध्यात्म और अंतर्दर्शन को उसकी साधना मानते हैं।”

योगाभ्यास आठ खंडों में विभक्त है—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। वस्तुतः इनमें से सात को सहायक कहें और प्रत्याहार को प्रधान कहें तो इसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए। इन सभी क्रियाओं का एकमात्र उद्देश्य जीवात्मा को अंतर्दर्शी बनाना, आत्मानुभूति प्राप्त करना है। प्रत्याहार को इन सबका एक समूहवाची नाम कह सकते हैं।

योग की क्रियाओं में जब व्यक्ति अपने को बाह्य चिंतन, बाह्य सुख से सिकोड़ता है, तब उसकी अंतश्चेष्टाएं जाग्रत होती हैं। चेतना की उस जाग्रत अवस्था को शास्त्रीय भाषा में प्रत्याहार कहा जाता है। निद्रा की अवस्था में भी बाह्य दुनिया से मनुष्य विमुख हो जाता है। अंतर्जगत में प्रवेश करता है, परंतु साथ ही अपनी सजगता को भी बनाए नहीं रखता है। प्रत्याहार में पूरी तरह अंतर्जगत में सजगता रहती है, यद्यपि बाहरी स्थिति निद्रा जैसी ही लगती है।

प्रत्याहार की अवस्था का वैज्ञानिक विवेचन करते हुए एन्डर्सन ने 1968 में कहा था—मस्तिष्क रिद्धम जेनेरेटर के मध्य तालमेल जैसी स्थिति का हो जाना ध्यान की प्रत्याहार अवस्था का लक्षण है। उस अवस्था में मस्तिष्क अधिक सक्रिय हो जाता है, स्वतः ही वास्तविक स्वरूप को प्रकट करने लगता है।

यह स्थिति शारीरिक, मानसिक विक्षोभों से मुक्त होने पर ही संभव होती है। धैर्यशीलता एवं तत्परता के साथ संलग्न रहने पर प्रत्याहार की आंतरिक सजगता की अवस्था को प्राप्त किया जा सकता है। हथेली पर सरसों उगाने जैसी जल्दबाजी करने वाले प्रायः असफल ही रहते हैं। शारीरिक दुःख-दर्द, मानसिक तनाव, संस्कार आदि मुख्य बाधा उपस्थित करते हैं। शरीर व मन की शुद्धि एवं कुसंस्कारों का उन्मूलन धीरे-धीरे होता है। प्रत्याहार-साधना के लिए शरीर में तीनों गुणों सत्त्व, रज एवं तमस् में संतुलन-समन्वय होना जरूरी है। तीनों तत्त्वों की साम्यावस्था में ही दिव्यचेतना का अवतरण संभव हो पाता है। यम-नियम, आसनादि को देश-काल-परिस्थितियों के अनुसार अपनाकर शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक स्वास्थ्य का आनंद अनुभव किया जा सकता है।

(22)

प्रत्याहार के अभ्यास से उच्चतर चेतना का विकास होता जाता है। अपने आंतरिक एवं बाह्य जीवन में क्रमशः हम शांति एवं आनंददायक अनुभव करेंगे। अपने अंतर में ही प्रकाश (सद्ज्ञान) की स्फुरणा होगी और दूसरों के साथ व्यावहारिक जीवन में समन्वय-संतुलन स्थापित करने में सुगमता होगी।

वैज्ञानिक परीक्षणों ने इस तथ्य को कसौटी पर सत्य पाया है। मैकगिल यूनिवर्सिटी में एक बार कुछ लोगों को साउंडप्रूफ कमरे में रखा गया। उन्हें काला चश्मा पहनाकर दृश्य रूप से, बाह्य जगत से उनका संबंध विच्छेद किया गया। कानों से वह उस कमरे में पहले ही बाह्य ध्वनियों से अलग-थलग पड़ गए थे। स्पर्श की अनुभूति को कुछ रसायनों द्वारा नष्ट कर दिया गया। बैठने की सुविधा इस प्रकार की गई कि त्वचा की संवेदनशीलता बिल्कुल न रही।

जो लोग इस स्थिति में सो गए, उन्होंने देखा कि उन्हें इतने विलक्षण स्वप्न दीखे, जो सामान्य श्रेणी का व्यक्ति सचमुच भी आँखों से देखने को तरसता रहे। प्रसुप्तप्राय स्मृतियाँ कल हुई घटना की तरह सजीव हो उठीं। कुछ दृश्य तो ऐसे थे, जो ठीक अपने साथ घटित हुए, पर उनका कोई तारतम्य नहीं बैठाया जा सकता। मात्र उन्हें मस्तिष्क के न्यूरॉन की साधारण अवस्था कहकर छोड़ दिया गया। भारतीय दर्शन में पूर्वजन्मों की अनुभूतियों का सत्य संभव है। किसी दिन संभव है इसी तथ्य से प्रतिपादित हो जाए। अभी तो वैज्ञानिक ‘न्यूरॉन’ को ही पूरी तरह जाँच नहीं पाए हैं। उपर्युक्त स्थिति में मिले मस्तिष्क के विश्राम को अमृतोपम पाया गया है। इससे प्रत्याहार-साधनाओं का महत्त्व बहुत अधिक बढ़ जाता है।

अंतर्वर्ती स्थिति में चेतन को सक्रिय बनाने और बोध प्राप्त करने का सरल अभ्यास शिथिलीकरण-साधना या योगनिद्रा के रूप में किया जाता है। शिथिलीकरण किसी शांत-एकांत स्थान में इस तरह निश्चेष्ट लेट जाने को कहते हैं, मानो अपनी मृत्यु हो गई हो और मन तक ने काम करना बंद कर दिया हो। शिथिलीकरण विश्रामावस्था है। विश्राम से व्यक्ति अपनी थकान मिटाता है। नवीन शक्ति प्राप्त कर स्फूर्तिवान बनता है। निद्रा विश्राम का ही एक स्वरूप है। योगाभ्यास की योगनिद्रा से वही प्रयाजन कम समय में पूरा हो जाता है। कहते हैं कि नेपोलियन घोड़े पर चढ़े हुए ही योगनिद्रा द्वारा नींद की आवश्यकता पूरी कर लेता था, सोता नहीं था। महात्मा गांधी भी कई-कई रातों बिना सोए बिता दिया करते थे। योग की शिथिलीकरण विधि विश्राम की अपनी विशिष्टता है। आसन-प्राणायाम के अभ्यास के बाद कुछ समय शवासन (पूर्ण विश्राम) से शरीर-मस्तिष्क के अंग-प्रत्यंगों में नवीन चेतना एवं स्फूर्ति शक्ति का अनुभव होता है।

विश्राम की योगनिद्रा विधिसे उच्च रक्तचाप में कमी होती है। योगनिद्रा के अभ्यास से स्वसंचालित स्नायु-प्रणाली एवं अंतःस्रावी ग्रंथियों पर पड़ने वाले प्रभावों को संतुलित-नियंत्रित करने की क्षमता आती है। प्राणशक्ति का संचय होने के फलस्वरूप नवीन शक्ति का उदय अनुभव होता है।

शिथिलीकरण की विधियों से अब शारीरिक-मानसिक रोगों का निदान भी किया जाने लगा है। 'लूथ' की 'ऑटोजेनिक न्यूट्रलाइजेशन' और 'वोल्प्स' की 'सिस्टेमेटिक डिसेसीटाइजेशन' की विश्राम पद्धतियां योग की शिथिलीकरण प्रक्रिया के सदृश्य ही हैं। ये आधुनिक शारीरिक-मानसिक चिकित्सा-विधियाँ हैं। योग की शिथिलीकरण विधि प्रत्येक व्यक्ति के लिए सरल एवं साधारण है। इसका अभ्यास कर शरीर व मन-मस्तिष्क को स्वस्थ, सशक्त, स्फूर्तिमय रखा जा सकता है।

डॉ. के. के. दाते एवं उनके सहयोगी चिकित्सकों ने हृदय के रोगियों पर शिथिलीकरण के कई प्रयोग किए और योग की विश्राम और ध्यान-प्रक्रिया द्वारा उच्च रक्तचाप जैसी मनोशारीरिक व्याधियों का नियंत्रण करने में आशातीत सफलता प्राप्त की है। उन्होंने अपनी 'शवासन ए योगिक एक्सरसाइज इन दि मैनेजमेंट ऑफ हाइपरटेंशन' नामक पुस्तक में उल्लेख किया है कि शवासन के साथ ध्यान करने से उच्च रक्तचाप सामान्य हो जाता है तथा दवाइयों एवं उनके दुष्प्रभावों से मुक्ति मिल जाती है।

चिकित्सा के क्षेत्र में अब ध्यान को रक्तचाप की बीमारियों को दूर करने का एक विश्वसनीय साधन माना जाने लगा है। सॉन डियेगो (यू.एस.ए.) के वेटेरेन्स

एडमिस्ट्रेशन हॉस्पिटल में डॉ. स्टोन एवं डोलियों ने 19 रक्तचाप के रोगियों का अध्ययन किया। उन्होंने 14 रोगियों को श्वास के माध्यम से 'ध्यान' का प्रशिक्षण दिया। 5 को ध्यानपद्धति नहीं दिखाई गई। सभी रोगियों का रक्तचाप निदान से पहले एक-सा था। 6 महीने में ध्यान का अभ्यास करने वाले 14 रोगियों का रक्तचाप सामान्य हो गया। वे बिना दवाइयों के ही रोग से मुक्त हो गए।

शिथिलीकरण के मन-मस्तिष्क पर पड़ने वाले प्रभावों का अनेक वैज्ञानिकों, मनोवैज्ञानिकों द्वारा अध्ययन किया जा रहा है। ध्यान से तनाव किस प्रकार कम होता है, इस पर भी रोगों का सूक्ष्म वैज्ञानिक विश्लेषण किया जा रहा है और निश्चित उपचारपद्धति को जानकर शीघ्र ही इस प्रकार की बीमारियां दूर की जा सकेंगी।

ये तो व्यक्त लाभ हैं। आत्मिक लाभ अनेक गुना अधिक हैं। अविद्या से मुक्त होने को, अपने अंतर को देखने की क्रिया को योग या अध्यात्म कहा जाता है। वास्तविकता को जानने का ही पथ अध्यात्म है। ऋषियों, संत, महात्माओं ने बताया है—“अपने आत्मस्वरूप को पहचानो, आत्मबोध करो, अपने वास्तविक स्वरूप को समझो।”

भगवान श्रीकृष्ण ने भी गीता में कहा है—

(23)

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥६/५॥

“मनुष्य को चाहिए कि वह अपना उद्धार अपने आत्मस्वरूप से करे, अपनी आत्मा को अधोगति में न पहुंचाए, क्योंकि मनुष्य की जीवात्मा ही उसका शत्रु अथवा मित्र है, अर्थात् कोई अन्य शत्रु या मित्र नहीं है।” परन्तु प्रश्न इस बात का है कि आत्मस्वरूप को कैसे जाना जाए, वहां तक कैसे पहुंचा जा सकता है? इसका मार्ग महापुरुषों, ऋषियों, संतों ने बताया है—चेतना के शारीरिक एवं मानसिक स्तरों से ऊपर उठने का।

उसके लिए प्रत्याहार का अवलंबन अनिवार्य बताया गया है। आत्मस्वरूप को जानने का, अंदर देखने की विधि का मूल ध्यान ही है। चेतना के उच्च स्तरों तक पहुंचने का मार्ग यही है। आत्मविकास का प्रथम चरण ध्यान है। ध्यान में व्यक्ति आत्मचिंतन करता है। अपने व्यावहारिक जीवन में आदर्शों एवं सिद्धांतों का समावेश करके आत्मोन्नति की ओर अग्रसर हो जाता है। इस ध्यान-योग अभ्यास के लिए साधक को वासना, तृष्णा, अहंता, के बोझ को हलका करता होता है। स्थायी सुख-शान्ति प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्ति को 'ध्यान' के द्वारा अपनी चेतना का विकास करना चाहिए। अविद्या या भवसागर से छूटने का मात्र यही मार्ग है।

संकलित

पत्रिकाओं में लेख लिखने की कला

— एस. सी. गोयल

प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति के मन में कभी न कभी यह उमंग उठती है कि वह भी कुछ लिखे। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है एवं दूसरों से मिलना, उनसे बातचीत करना उसके स्वभाव का अंग है। यदि किसी व्यक्ति को कठोरतम दंड देना हो तो वह यही होगा कि उसे अकेले एक कोठरी में बंद कर दिया जाये एवं किसी से बातचीत न करने दी जाये। लेखन भी आपसी वार्तालाप का ही एक प्रकार है, अन्तर केवल यह होता है कि यह वार्तालाप कागज के माध्यम से होता है।

लेखन कई प्रकार का हो सकता है—पत्र, पुस्तक, निबंध, किसी पत्रिका में लेख इत्यादि। लेखन के कुछ अन्य प्रकार भी हैं जैसे कहानी, कविता, नाटक, उपन्यास इत्यादि। दूसरे प्रकार का लेखन गल्प साहित्य कहलाता है। इसके लिए कुछ जन्मजात प्रतिभा चाहिए। कविता प्रत्येक व्यक्ति नहीं लिख सकता। यह बात उपन्यास एवं कहानी लेखन पर भी किसी हद तक लागू होती है। वैसे तो सभी प्रकार के लेखन में जन्मजात प्रतिभा का एक छोटा सा अंकुर आवश्यक है जो सतत अभ्यास एवं कठोर परिश्रम से एक बट वृक्ष बन सकता है। किन्तु वह लेखन जिसे नानाफिक्शन कहते हैं अधिक सुलभ है।

व्यक्ति की इच्छा तो प्रायः ही पुस्तक लिखने की होती है किन्तु यह अत्यंत कठिन, व्यय साध्य एवं समय लेने वाला कार्य है। पुस्तक लिखने के लिए जिस विषय पर पुस्तक लिखना चाहते हैं उस पर ढेर सारी सामग्री इकट्ठी करनी होगी। उसे व्यवस्थित करके क्रम में सजाना एवं पुस्तक का रूप देना काफी समय लेने वाला कार्य है। सबसे अधिक कठिन उस पुस्तक को प्रकाशित करना है। नये लेखक की पुस्तक छापने के लिए मुश्किल से ही कोई प्रकाशक तैयार होगा। यदि आप अपने व्यय से पुस्तक छपा भी लें तो उसकी मार्केटिंग बहुत बड़ी समस्या है। मैंने अनेक लेखकों को देखा है कि जिन्होंने अपना पैसा खर्च करके पुस्तक छपाई एवं उसे मित्रों एवं परिचितों में बांट दिया। वह पुस्तक उनके मित्रों के यहां पड़ी रही क्योंकि फ्री में प्राप्त पुस्तक को कोई नहीं पढ़ता। अंत में वह रद्दी में बिक जाती है।

छपास की इस प्यास को बुझाने का सबसे अच्छा एवं अपेक्षाकृत आसान तरीका है पत्रिकाओं में लेख लिखना। अनेकों पत्रिकाएँ निकलती हैं अनेक विषयों पर लेख

भी छापती हैं। आप अपनी रुचि एवं ज्ञान के अनुसार कोई भी विषय चुन सकते हैं। निश्चय रूप से प्रकाशित होने की कठिनाई यहां भी आयेगी। एकदम नये लेखक जिसका नाम सम्पादक महोदय ने कभी भी नहीं सुना हो एवं न ही उसकी कोई रचना कहीं छपी हो उसका लेख स्वीकृत हो जाना उतना आसान नहीं है। किन्तु फिर भी यदि लेख पूर्ण परिश्रम से एवं अच्छी रिसर्च करके लिखा गया हो तो स्वीकृति के अवसर बढ़ जाते हैं। यहां हम इस बात पर विचार करेंगे कि एक नया लेखक पत्रिकाओं में लेख लिखने वाला एक सिद्धास्त लेखक कैसे बन सकता है।

(24)

पत्रिकाओं में अच्छा लेख लिखने के लिए सबसे पहली आवश्यकता पत्रिकाओं को पढ़ने की है। बुक स्टॉल एवं अन्य समाचार पत्र विक्रेताओं के यहां ढेरों पत्रिकाएँ उपलब्ध हैं। उन्हें निरन्तर एवं पर्याप्त संख्या में पढ़ना आवश्यक है। इस निरन्तर अध्ययन से कुछ समय के पश्चात् स्वयमेव में यह अनुमान होने लगता है कि किस पत्रिका में किस प्रकार के लेख छपते हैं, उनके पाठक कौन से वर्ग के हैं एवं किस प्रकार के लेख अधिक लोक प्रिय हैं। केवल पत्रिकाओं ही नहीं दैनिक पत्रों के सम्पादकीय एवं अन्य लेखों को भी ध्यान पूर्वक पढ़ना चाहिए। इस विशाल अध्ययन से सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि अच्छे एवं बुरे लेखन की पहचान होने लगती है। किस लेख में विचारों का तारतम्य ठीक प्रकार बना हुआ है एवं लेखक जो कुछ कहना चाहता है उसका जोरदार तरीके से कहने में सफल रहा है यह नीर क्षीर विवेक भी अधिक लेख पढ़ने से विकसित हो जाता है।

पत्रिकाओं के सफल लेखक के लिए सबसे पहला कदम विषय का चुनाव है। विषय दोनों ही बातों पर निर्भर करता है : आपकी रुचि किस विषय में है एवं पाठक की मांग क्या है। विषय अनेक हो सकते हैं—धर्म, संस्कृति, राजनीति, खेल, विज्ञान, शिक्षा इत्यादि। इन विषयों के स्रोत भी अनेक हैं—पुस्तकें, पत्रिकाएँ, टी.वी., समाचार पत्र, आसपास घटित होने वाली घटनाएँ। अधिक अच्छा यह रहेगा कि आप एक नोट बुक रखें एवं जैसे ही लेख का कोई विषय दिखलाई पड़े उसे नोट कर लें। केवल इतना ही नहीं उसके महत्वपूर्ण बिन्दु भी नोट बुक में लिख लें। लेख लिखते समय ये बिन्दु अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होंगे।

लेख का विषय निश्चित हो जाने के पश्चात् उस पर रिसर्च अथवा सामग्री का संकलन करना आवश्यक है। लगभग प्रत्येक बड़े नगर में अच्छे पुस्तकालय खुले हुए हैं जहां लगभग प्रत्येक विषय पर ढेरों पुस्तकें उपलब्ध रहती हैं। लेख के विषय से संबंधित पुस्तकों से उपयोगी अंश फोटो कॉपी कराये जा सकते हैं। इसी प्रकार दैनिक समाचार पत्रों की कटिंग एवं पत्रिकाओं में प्रकाशित उस विषय से सम्बन्धित लेख

अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। आज कल प्रत्येक विषय पर अत्यन्त उपयोगी एवं अपटूडेट सामग्री कम्प्यूटर में इन्टरनेट पर उपलब्ध है। गूगल एवं विकिपीडिया पर भरपूर जानकारी मिल जाती है। विशेष बात यह है कि यह सामग्री अंग्रेजी में होती है। अच्छा यह होगा कि यह लेख लिखने के लिए तीन या चार विषय छांट लिये जायें एवं उनके अलग फोल्डर बना लिये जायें। जब भी उन विषयों पर उपयोगी सामग्री उपलब्ध हो उससे संबंधित फोल्डर में रख दी जाये।

सामग्री एकत्र हो जाने के पश्चात् अब लेख लिखने का प्रश्न है। प्रत्येक लेख का अपना एक अलग ढांचा होता है एवं कोई ऐसा पैटर्न नहीं है जिसके आधार पर प्रत्येक लेख को लिखा जा सके। लेख का विषय, जिस पत्रिका के लिए आप लिख रहे हैं, आपके लेख के सम्भावित पाठक कौन से हैं एवं कभी-कभी लिखने का समय भी ये सब चीजें मिलकर निर्धारित करेंगी कि लेख किस प्रकार लिखा जाये। जैसे-जैसे लेखनी मंजनी प्रारम्भ हो जायेगी आप में एक अंतदृष्टि का निर्माण हो जायेगा जो लेख के ढांचे का निर्धारण करेगा।

किन्तु मोटे तौर पर प्रत्येक लेख के तीन भाग किये जा सकते हैं : प्रारम्भ, मध्य एवं अंत। प्रारम्भ अत्यन्त महत्वपूर्ण है एवं इसमें लेख का शीर्षक भी सम्मिलित है। शीर्षक इस प्रकार का होना चाहिए जो दो या तीन शब्दों में लेख का मन्तव्य स्पष्ट कर सके। यथा सम्भव शीर्षक प्रश्न के रूप में नहीं होना चाहिए क्योंकि पाठक को मालूम है कि लेखक उस प्रश्न का उत्तर देने जा रहा है। शीर्षक कभी भी ऐसा नहीं होना चाहिए जिससे आप सहमत न हों या लेख में उसके विरुद्ध तर्क देने पड़े। उदाहरण के लिए इन दो शीर्षकों को देखें-“भारत प्रजातंत्र के योग्य नहीं है” एवं “क्या भारत प्रजातंत्र के योग्य है?”। प्रथम में आपको भारत को प्रजातंत्र के अयोग्य बतलाना ही पड़ेगा किन्तु दूसरे में पक्ष विपक्ष दोनों में ही तर्क दिये जा सकते हैं।

मनोरंजक बनाने के लिए लेख का आरम्भ किसी घटना, मुहावरे या कहावत से किया जा सकता है। किन्तु घिसा पिटी नहीं होनी चाहिए जिससे सुनते सुनते लोग उकता गये हों। इसमें कुछ नयापन होना चाहिए।

लेख का प्रारम्भ भी समान रूप से महत्व रखता है। इसे अंग्रेजी में लीड कहते हैं। यह लीड प्रारम्भ की कुछ पंक्तियां, एक पैराग्राफ या सम्पूर्ण पृष्ठ भी हो सकता है। विशेष बात यह है कि लीड यह सुनिश्चित करे कि लेखक क्या कहना चाहता है, उस विषय में उसका मत क्या है एवं यह संकेत दे कि पाठक को आगे क्या पढ़ने को मिलेगा।

लेख के मध्य भाग का महत्व भी कुछ कम नहीं है। इसी भाग में विषय को

विस्तार दिया जाता है एवं इस प्रकार व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत किया जाता है कि एक तर्क दूसरे से स्वभाविक रूप से निकलता जान पड़े। इस भाग में कुछ आंकड़े, पुस्तकों के उदाहरण, विद्वानों के भाषणों के अंश इत्यादि भी दिये जा सकते हैं। किन्तु ये सब विषय से सम्बन्धित हो एवं उसे पुष्ट करने वाले होने चाहिए।

लेख का अंत मध्य से भी अधिक महत्वपूर्ण है। सम्पूर्ण लेख का सारांश इसी में आता है। यदि अंत रोचक एवं प्रभावशाली होगा तो मध्य भाग के कमजोर होने के दोष की भी पाठक अनदेखी कर देगा। जिस प्रकार अच्छे भोजन के अंत में थोड़ा सा स्वादिष्ट मिष्ठान्न यदि मिल जाये तो मुख में उसका स्वाद देर तक बना रहता है उसी प्रकार लेख का प्रभावशाली एवं रोचक अंत पाठक पर अमिट छाप ही नहीं छोड़ता अपितु उसे देर तक गुदगुदाता भी रहता है।

पत्रिकाओं में लेख लिखते समय कुछ और बातों का भी ध्यान रखना चाहिए-

- भाषा यथा संभव सरल हो। इस प्रकार के लेखक को पाठक के स्तर पर आकर अपनी बात समझानी पड़ती है अन्यथा पाठक लेख को बीच में ही छोड़ देगा। अपना मंतव्य स्पष्ट करने के लिए कुछ अन्य भाषाओं जैसे अंग्रेजी या उर्दू के शब्दों का प्रयोग भी करना पड़े तो कोई हर्ज नहीं है।
- लेखक को किसी एक विषय में विशेषता प्राप्त कर लेनी चाहिए। इससे पाठक वर्ग में उसकी पहचान बनेगी एवं वह अधिकार पूर्वक लिख सकेगा।
- जिस विषय की पूर्ण समझ लेखक को स्वयं न हो उस पर कभी न लिखें। आपके शब्दों का माया जाल पाठक को भ्रमित नहीं कर सकेगा।
- आंकड़े, घटनाएँ एवं तथ्य नितांत सही एवं सत्य होने चाहिए। झूठ पकड़ में आने पर आपकी विश्वसनीयता को ठेस पहुंचेगी।
- लेख के आकार का विशेष ध्यान रखें। पत्रिकाओं में लेखों के आकार की सीमा होती है। अधिक लम्बा लेख या तो छपेगा ही नहीं या सम्पादक की कलम का शिकार हो जायेगा जिससे उसकी सुन्दरता समाप्त हो जायेगी।

(25)

□



समाचार चैनलों से विलुप्त होते समाचार

— राजेन्द्र कुमार

टेलीविजन उद्योग के विकास के पूर्व विभिन्न विषयों से सम्बन्धित समाचारों एवं सूचनाओं से अवगत होने का माध्यम केवल समाचार पत्र एवं रेडियो था। इधर कुछ वर्षों में टेलीविजन सुविधा के अभूतपूर्व विस्तार ने रेडियो की महत्ता को ही पीछे नहीं ढकेला वरन् पहुंच के मामले में अखबारों से भी काफी आगे निकलने में सफलता प्राप्त की है। इस समय भारत विभिन्न भाषाओं के लगभग 1400 चैनलों के साथ विश्व में चौथे स्थान पर है। यदि समाचार चैनलों की बात करे तो दुनिया के किसी भी देश में इतने चैनल नहीं मिलेंगे।

समाचार चैनलों की संख्या में इस अप्रत्याशित वृद्धि का कारण देश के लोगों की राजनीतिक जागरूकता है। ये दर्शक चाहते हैं कि समाचार माध्यम उन्हें देश की राजनीतिक, सामाजिक, अर्थजगत व खेल से सम्बन्धित समाचारों से शीघ्रतिशीघ्र अवगत कराये। दर्शकों की इसी जिज्ञासा की पूर्ति एवं अधिक से अधिक संख्या में उन्हें आकर्षित करने के उद्देश्य से चैनलों द्वारा सबसे पहले समाचार दिखाये जाने की होड़ लग गई। किन्तु प्रतियोगिता की इस दौड़ में आगे आने की धुन और सबसे पहले समाचार प्रसारित करने के प्रयास के कारण प्रायः बिना पूरी जांच पड़ताल के अपरिपक्व समाचार भी प्रसारित होने लगे। इससे समाचार की विश्वसनीयता में कमी आई। ऐसे समाचारों के प्रति लोगों की अरूचि पैदा होना स्वाभाविक था। परिणाम स्वरूप चैनलों ने समाचार के स्थान पर अन्य कार्यक्रम प्रसारित करने आरम्भ कर दिये।

समाचारों में राजनैतिक रिपोर्टिंग का प्रारम्भ से ही महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इसी वजह से अधिकांश पत्रकारों की सबसे बड़ी महत्वाकांक्षा राजनैतिक रिपोर्टिंग व राजनीतिक पत्रकारिता की होती है। इधर कुछ वर्षों से समाचार चैनलों में राजनीतिक पत्रकारिता एवं रिपोर्टिंग पूरी तरह से फैशन के बाहर हो गई व चैनलों के हाशिये पर पहुंच गई है। एक सर्वेक्षण में यह ज्ञात हुआ कि 2005 में प्राइम टाइम्स पर राजनीतिक रिपोर्टिंग को 23.1 प्रतिशत जगह मिली जो 2007 में घटकर 10.09 प्रतिशत रह गई। 2009 में आम चुनावों के कारण राजनीतिक रिपोर्टिंग पुनः बढ़कर 20.36 प्रतिशत हो गई। सर्वेक्षण में शामिल चैनलों में दो अंग्रेजी के व एक सरकारी चैनल थे। इनमें राजनीतिक रिपोर्टिंग को ज्यादा जगह मिलती है। यदि इन्हें हटा दिया जाय तो वास्तविक स्थिति निराशाजनक होगी।

इस गिरावट का कारण भारतीय राजनीति के विषय में रिपोर्टों की पर्याप्त जानकारी का अभाव है। इसके साथ-साथ इन चैनलों के सम्पादकीय विभाग रिपोर्टों की अज्ञानता के लिए उतने ही जिम्मेदार हैं। वे केवल बाइट पत्रकारिता को प्रोत्साहित करते हैं। उनके निर्देशानुसार पत्रकार केवल राजनीतिक घटनाओं के बारे में सूचना एकत्र करने का काम करते हैं। कुछ पत्रकार एवं सम्पादक विशिष्ट नेताओं या दलों के माउथपीस बने हुए दिखाई देते हैं। कभी वे नेताओं व कारपोरेट फरानों के बीच लार्बींग करते हैं तो कभी अफसरों व मंत्रियों की नियुक्ति में भूमिका निभाते नजर आते हैं। आजकल एक प्रवृत्ति पेड न्यूड की भी पनप रही है। यह सम्पादक की स्वतंत्रता पर गहरा आघात तो है ही साथ साथ चैनलों की सही विश्वसनीयता को भी समाप्त कर रही है।

(26)

ऐसा नहीं है कि राजनीतिक घटनाओं, नेताओं के मेल मुलाकातों, उनके भाषण एवं उनके द्वारा की जाने वाली आलोचना राजनीतिक रिपोर्टिंग नहीं है। किन्तु वास्तविक रिपोर्टिंग इसके कुछ आगे आती है। कभी-कभी जो घोषणा की जाती है या जो कहा जाता है उसके पीछे मतलब कुछ और होता है। व्यापक राजनीतिक परिपेक्ष्य में जो कुछ नहीं कहा गया या जो छिपाया जा रहा है उसे खोजना राजनीतिक रिपोर्टिंग का उद्देश्य होना चाहिए। इस सम्बन्ध में एक उदाहरण काफी होगा। भारत में आतंकवाद एक अहम मुद्दा है। आतंकवाद के आरोपी के मामले में शीघ्र निर्णय व तुरन्त कार्यवाही की मांग की जाती है। पार्लियामेंट के आतंकी हमले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अफजल को फांसी देने के निर्णय की पुष्टि की गई। फिर भी उस पर कार्यवाही रुकी हुई है। सत्ताधारी पार्टी का स्पष्टीकरण है कि अभी उसके पहले के अनेक मामले राष्ट्रपति द्वारा माफी पर निर्णय के लिए लम्बित हैं जबकि विरोधी पार्टी का आरोप है कि सरकार अल्पसंख्यकों की तुष्टीकरण में लगी हुई है। किसी की भी बात सही नहीं मालूम होती। मीडिया का कर्तव्य है कि वास्तविक स्थिति को सामने लाये। इस हमले में जो मारे गये वे भले ही मुसलमान न हों किन्तु यदि यह हमला कामयाब हो जाता तो क्या भवन के अन्दर उपस्थित मुसलमान कर्मचारी या मंत्री नहीं मरते। ऐसे में करोड़ों मुसलमानों पर यह आरोप लगाना अन्याय है कि वे आतंकवाद में सजा पाये व्यक्ति को छुड़ाने में दिलचस्पी रखते हैं। क्या समाचार चैनलों का यह दायित्व नहीं है कि वे ओपीनियम पोल एवं चर्चार्थे आयोजित करके सही तथ्य को सरकार व जनता के समक्ष रखें?

यह तो हुई राजनीतिक रिपोर्टिंग की बात। अब देखना यह है कि इस बचे हुए समय का उपयोग चैनलों ने किस प्रकार के समाचारों के प्रसारण में किया है। यदि

दिखाये जाने वाले कार्यक्रमों का विश्लेषण करें तो यहां भी निराशा ही हाथ लगेगी। कहने को तो ये चैनल समाचार प्रसारित करने के लिए ही चालू किये गये हैं किन्तु सच्चाई यह है कि प्रायः सभी चैनलों में समाचार का स्थान मनोरंजन, कामेडी, सिनेमा, रियलिटी शो, सीरियल के अंशों एवं से लोब्रिटीज के गासिप ने ले लिया है। अब तो इन कार्यक्रमों की घुसपैठ प्राइम टाइम में भी हो गई है।

यह स्थिति छोटे चैनलों की ही नहीं वरन् आज तक ऐसे सबसे तेज व सबसे पहले समाचार प्रसारित करने वाले चैनलों की भी है। इस चैनल से आधे घंटे का एक नियमित कार्यक्रम सास बहू व बेटियों के नाम से कई सालों से प्रसारित होता आ रहा है। आश्चर्य है कि इसी शीर्षक से एक घंटे का प्रोग्राम और जोड़ दिया गया है तथा उसे 60 मिनट का झमाझम मनोरंजन या अन्य बदले हुए नाम से प्रसारित किया जा रहा है। इसमें चैनलों में प्रसारित होने वाले सीरियलों की कुछ झलकियों के अलावा कभी-कभी उसी दिन दिखाये जाने वाले घटनाक्रम का आभास होता है। इसके अलावा 'ये लमहे क्या कहते हैं', 'तीन मुलाकाते तीन अंदाज', 'रिश्ते अवार्ड नाइट की धूम', 'मूवी मसाला', 'मल्लिका शोरावत के तेवर', 'वालीवुड का बादशाह बना बेड रूप का बादशाह', 'शाहरूख सलमान के झगड़े आदि अनेक शीर्षकों से जो कार्यक्रम विभिन्न समाचार चैनलों से प्रसारित होते रहे हैं वे समाचार तो क्या मनोरंजन की श्रेणी में भी रखने योग्य नहीं होते। स्टार न्यूज, एन डीटीवी, आई बी एन 7, जी न्यूज आदि कोई भी चैनल खोल लीजिए। किसी में बिग बॉस के अंशों का प्रसारण दिखेगा जिसमें खुल्लम खुल्ला प्यार व डॉली गाने गाते रोती हुई दिखाई जायगी, किसी में शीला हो जाओ सावधान, मुन्नी हो जाओ होशियार, बिल्लो हो जाओ खबरदार शीर्षक से इन पात्रों की अजीबों गरीब हरकते देखने को मिलेंगी या आइटम चोर राखी सावन्त के नाम से राखी सावन्त मुन्नी बदनाम हुई गाना गाती दिखेंगी। एक चैनल में सलमान कटरीना का मजाक उड़ाते हुए दिखाया गया व सलमान द्वारा कहे गये शब्दों को कई बार दोहराया गया जैसे वह बहुत महत्वपूर्ण बयाम हो। एन डीटीवी में कुछ दिन पहले व्यंजन बनाने की प्रतियोगिता का आयोजन दिखाया जा रहा था।

ऐसा नहीं है कि समाचारों की कमी हो गई है। विभिन्न चैनलों से न्यूज फटाफट, स्पीड-न्यूज, नान स्टाप, सुपर फास्ट, 2 मिनट में दस खबरे आदि शीर्षकों से समाचार प्रसारित किये जाते हैं। देखकर ऐसा लगता है कि जैसे जल्दी जल्दी समाचार प्रसारण की रस्म अदायगी की जा रही हो। स्थिति तब और भी शोचनीय मालूम होती है जब प्राइम टाइम पर चैनल के राजनीतिक सम्पादक राखी सावन्त का इंटरव्यू लेते हैं व उससे 'देश को बिगाड़ने' के बारे में सवाल पूछते हैं या दूसरे चैनल पर डिपी महाजन

का इंटरव्यू लिया जाता है व उससे राहुल महाजन से बिगड़ते रिश्तों पर सवाल पूछे जाते हैं।

समाचार चैनलों द्वारा मनोरंजन के कार्यक्रम दिखाये जाने पर कोई कानूनी बंदिश नहीं है। किन्तु यहां प्रश्न है उनकी गरिमा का। लोकतांत्रिक समाज में समाचार मीडिया को एक सार्वजनिक महत्व की संस्था माना जाता है जिसे संवैधानिक गारंटी के साथ कई विशेषाधिकार प्राप्त होते हैं। समाचार प्रसारण का समाज पर गहरा प्रभाव पड़ता है। चैनलों का कर्तव्य है कि समाचार का प्रसारण इस ढंग से करे कि एक स्वस्थ समाज का निर्माण हो। यदि ऐसा नहीं होता तो समाज में विकृति पैदा होगी। ऐसे समाज में अशान्ति, असुरक्षा, अश्लीलता, धोखा घड़ी एवं महिलाओं के प्रति अत्याचार के मामले बढ़ेंगे। इनका परिणाम इन चैनलों को भी भुगतना होगा।

चैनलों द्वारा प्रायः प्रसारण के लिए जनता की रूचि का बहाना लिया जाता है। उनके पास इसे जानने का माध्यम केवल टी आर पी है। सामान्य दर्शक को इसका अर्थ भी नहीं मालूम। किसी से पूछिये, उत्तर मिलेगा टेलीविजन रेटिंग प्वाइंट। जबकि इसका अर्थ है टैम रेटिंग प्वाइंट जो टैम नामक कम्पनी के नाम से है। देशभर में इनके केवल लगभग कुछ सौ बक्से लगे हैं। कम्पनी के अलावा कोई नहीं जानता कि बक्से कहां कहां लगे हैं। निश्चित रूप से ये अधिक संख्या वाले मध्यवर्गीय घरानों में नहीं लगे। बिहार में तो एक बक्सा भी नहीं लगा। ऐसी स्थिति में टी आर पी सारी जनता की रूचि का प्रतिनिधित्व कैसे कर सकता है। सामान्य जन की रूचि के सम्बन्ध में जनता की नब्ज टटोलने के लिए अभी तक किसी भी समाचार चैनल ने न तो कोई चर्चा आयोजित की और न ही ओपीनियन पोल का ही आयोजन किया।

यदि सर्वेक्षण किया जाये तो पता चलेगा कि इन चैनलों में समाचार प्रसारण को 20 प्रतिशत से अधिक का समय नहीं दिया जा रहा। शेष 80 प्रतिशत का समय विज्ञापन, मनोरंजन, नाच गाने व सिनेमा और टी वी के पात्रों की झलकियों आदि दिखाने की भेंट चढ़ जाता है। आज के उदारीकरण की दौड़ में मीडिया कम्पनियां आर्थिक रूप से समृद्ध हो रही हैं किन्तु भारतीय समाज और लोकतंत्र वैचारिक रूप से दरिद्र होता जा रहा है। यह स्थिति निश्चय ही निराशापूर्ण है।



‘शब्द कैसे कैसे’

– किशोर अग्रवाल

प्राचीन काल से ही व्यक्ति अपने भावों और विचारों की अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से करता रहा है और भाषा का निर्माण सार्थक शब्दों से होता है। प्रत्येक भाषा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। ऐसे शब्द केवल पशु पक्षी की आवाज या बोली बन सकते हैं। प्रत्येक भाषा में समय-समय पर नये-नये शब्द जुड़ते चले जाते हैं। ये नये शब्द भाषा को अधिक समृद्ध और अधिक संप्रेषणीय बनाते हैं।

आज पूरे विश्व में नये शब्दों को गढ़ने की एक होड़ सी लगी हुई है। प्रत्येक भाषा में नित प्रति नये शब्दों की उत्पत्ति की जा रही है। भारत में हिन्दी और इंग्लिश को मिलाकर हिग्लिश शब्द का निर्माण किया गया। स्पेन में स्पेनिश और इंग्लिश को मिलाकर ‘स्पैग्लिश’ जैसी भाषा का विकास हुआ। इसी प्रकार जापान में जापनीज और इंग्लिश को मिलाकर ‘जैपलिश’ तथा फ्रांस में फ्रांग्ले’ अस्तित्व में आई है। स्कैंडिनेवियाई देशों में स्वाडिश और इंग्लिश को मिलाकर ‘स्वीडिलवा’ जैसी मिश्रित भाषा का निर्माण किया गया। इन तथ्यों को देखने से स्पष्ट होता है कि जहां पर भी अंग्रेजों ने राज्य किया वहीं पर इंग्लिश ने अधिक प्रभाव छोड़ा। परिणाम स्वरूप इंग्लिश के साथ वहां की भाषा के शब्दों के घालमेल से कई खिचड़ी भाषा का प्रादुर्भाव हो गया और ये खिचड़ी भाषायें प्रचलन में आ गईं।

संचार साधनों में शब्दों की संक्षिप्तता और सटीक प्रयोग पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। इस क्षेत्र में नित नवीन शब्दों की रचना की जा रही है। ‘एडवर्टेनमेंट’ में एडवर्टाईजमेंट और एन्टरटेन्टमेन्ट शब्द शामिल किये गये हैं। ‘टेलिजेनिक’ में टेलीविजन और फोटोजनिक का सम्मिश्रण है। आजकल सुप्रसिद्ध सेलिब्रिटी और ब्लाग को मिलाकर नया शब्द ब्लागब्रिटी बना दिया गया जब कि ‘ब्लाग’ स्वयं बेव और लौग से मिलकर बना है। इसी प्रकार बाइनरी और डिजिट को मिलाकर ‘बिट’, केबल और टेलीग्राम को मिलाकर केवलग्राम, ब्रेकफास्ट व लंच को मिलाकर ब्रंच, फैनैटिक और मैगजीन को मिलाकर ‘फैनजीन’ जैसे असंख्य शब्दों की रचना की जा रही है।

इन्टरनेशनल नेटवर्क का संक्षिप्त रूप ‘इन्टरनेट’ है। साइबर स्पेस इन्फार्मेशन लाइन बन गया है। यह धड़ल्ले से नये-नये शब्द गढ़ रहा है। साइबरनेटिक्स और सोफ्टवेयर का योग साइबर स्पेस है। साइबर स्पेस अर्थात् कम्प्यूटर नेटवर्क पर आधारित

सूचनाओं के आदान प्रदान का पूरे विश्व का एक सेतु। कम्प्यूटर और ट्रेनर का मिलाकर ‘कम्प्यूट्रेनर’ शब्द गढ़ा गया। इसी प्रकार कम्प्यूटर और म्यूजियम को मिलाकर ‘कम्प्यूजियम’, साइबर और लाइब्रेरियन को मिलाकर ‘साइब्रेरियन’ बनाया गया है। ओडोविजुअल में डाक्यूमेट्री और सोप ओपेरा को मिलाकर डाक्यूसोप बना दिया गया।

सोप ओपेरा विश्व के प्रथम टी.वी. धारावाहिक का नाम था। अमेरिका में प्रथम बार इसका प्रसारण दोपहर के वक्त घरेलू महिलाओं के मनोरंजन के लिये होता था। प्राक्टर एन्ड गैम्बल कम्पनी ने धारावाहिक के बीच में विज्ञापन देने शुरू किये जिससे महिलायें इस कम्पनी के उत्पाद प्रयोग करने लगे और कम्पनी की बिक्री बढ़ जाये। इस प्रकार ऐसे धारावाहिकों को सोप ओपेरा का नाम दिया गया।

(28)

भारत में टेलीविजन के विकास में इन सोप ओपेराओं का बहुत बड़ा योगदान है। ‘टेलिविजन’ शब्द ग्रीक भाषा के ‘टेली’ तथा लैटिन भाषा के ‘विजन’ शब्द से मिलकर बना है। टेली का अर्थ है दूरी और विजन का अर्थ है देखना

इसी प्रकार सिनेमा के क्षेत्र में सिनेमा और मैजिक को जोड़ कर सिने मैजिक शब्द कहा गया। सिनेमा और मैनियाक को जोड़कर ‘सिनेमैनियाक’, सिनेमा और काम्प्लेक्स को जोड़कर सिनेप्लेक्स तथा सिनेमा और पैनोरमा को जोड़कर ‘सिनेरमा’ जैसे नये शब्द गढ़े गये। फैक्टस और फिक्शन को मिलाकर ‘फैक्शन’ जैसा शब्द बनाया गया जिसमें तथ्यों और कल्पनाओं का एक अजीब सा घालमेल रहता है।

तस्वीरों व दृश्यों के क्षेत्र में भी अनेक शब्दों की रचना इसी प्रकार की गई है। पिक्चर और एलीमेंट को मिलाकर ‘पिक्सल’ बायोग्राफिकल और पिक्चर को मिलाकर बायोपिक शब्द गढ़े गये। कैमकार्डर कैमरे और रिकार्डर के संयोजन से बना। फेमिनिन और सेमिनार को मिलाकर फेमिनार की रचना की गई।

इलेक्ट्रोनिक के लिये हुई ई जोड़ कर शब्द संक्षेप किये गये-ई बुक, ई मेल, ई कामर्स, ई गर्वनेस, ई मार्केटिंग, ई पेपर, ई पब्लिशिंग आदि। इसी प्रकार कार्मिशियल इन्फोमेशन का संक्षिप्त शब्द इन्फार्मेशियल है। इन्फोरमेशन तथा एन्टरटेन्टमेन्ट को मिलाकर ‘इन्फोटेन्मेन्ट’ शब्द बनाया गया है। इन्टरनेट और सिटीजन को मिलाकर ‘नेरीजन’ तथा प्रिंट मीडिया से सम्बद्ध इटलेनचुअल को प्रिंटलेक्चुअल का नाम दिया गया है।

रेडियो और ब्राउकास्ट को मिलाकर ‘रेडियोकास्ट’ और ग्लैमर और रिटज को मिला कर ‘ग्लिटज’ जैसे शब्द गढ़े गये। रेडियो शब्द गढ़ने में सबसे आगे है क्योंकि

उसके पास केवल शब्दों की पूंजी है। रेडियों के पास न दृश्य है और न ही मुद्रित साधन। इस सबके बाद भी रेडियो सबसे अधिक सामाजिक है तथा सबसे अधिक लोकप्रिय साधन है।

पूरे विश्व में आर्थिक पक्ष भी बहुत महत्वपूर्ण होकर उभरा है। आर्थिक पत्रकारिता से सम्बन्धित अखबार विभिन्न उभरती अर्थव्यवस्थाओं का समय-समय पर विश्लेषण व अध्ययन करते रहते हैं। इस संदर्भ में भारत और चीन को मिलाकर चाइनिष्ठिया तथा चीन और अमेरिका को मिलाकर 'चिमेरिका' जैसे आकर्षक शब्द गढ़ लिये गये। मन्दी के दौर में ऐसी मन्दी जो केवल पुरुष वर्ग को प्रभावित करती है को 'मैनसेसन या हीसेसन' कहा गया। इसी प्रकार वह किताब जो डिजिटल हो और कुछ वीडियो भी रखती हो को 'वक' (वी.ओ.ओ.के.) के नाम से जाना जाता है।

मोबाईल फोन से भेजे जाने वाले सेक्सुअल मैसेज या चित्र भेजने को 'सेक्सेटिंग' कहा जाता है।

आज पूरी दुनिया में लगभग हर भाषा में अनेक शब्दों का संक्षिप्तीकरण कर प्रयोग करने का प्रचलन बढ़ता जा रहा है। मोबाइल तथा बेबलाग को मिलाकर 'मोबलाग', डिमांडयूलेटर और माडयूलेटर को मिलाकर 'मोडेम', मोटर तथा पैडल को मिलाकर मोपेड, मोटर व होटल को मिलाकर 'मोटल' बनाये गये हैं।

पृष्ठ 52 का शेष

अव्यक्त होती हैं। परम ऊर्जा वही रहती है। संपूर्णता की संपूर्ण प्रकृति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। संपूर्ण में संपूर्ण का जोड़ दो संपूर्ण ही होता है। पूर्ण में संपूर्ण घटाओं तो शून्य नहीं संपूर्ण ही बचता है। भारत ने इसी संपूर्णता का नाम रखा भगवत्ता। भगवत्ता में भगवा है, भगवा की संपूर्ण अनुभूति और प्रतीति ही भगवत्ता है। भगवत्ता की इकाई का प्रतिफल भाग्य है। भाग्य में बेशक कर्म फल की भावना है। लेकिन कर्मफल भी इकाई के ही श्रम का परिणाम नहीं होता। हमारे होने, न होने, सक्रिय या निष्क्रिय होने में हमारी कोई भूमिका नहीं है। यहां सारे खेल भगवत्ता के ही हैं। विज्ञान की भाषा में कहें तो संपूर्णता के भगवत्ता/संपूर्णता का खेल ही भाग्य या दुर्भाग्य रचता है।

भगवाकरण का प्रयोग भारतीय संस्कृति विरोधी तत्वों ने शिक्षा के लिए किया था, इतिहास के पाठ्यक्रमों के लिए भी। संविधान निर्माता राष्ट्रीय ध्वज में भी भगवा ध्वज था। श्रीराम की सेना भी इसी ध्वज को प्यार करती थी। उन्होंने शासन के लिए ही भारतीय दर्शन, वैदिक संस्कृति और भारतीय प्रतीकों का गहन अध्ययन किया था।



राष्ट्रीय चेतना के कवि पं. सोहन लाल द्विवेदी

– विनोदचन्द्र पाण्डेय 'विनोद'

पं. सोहनलाल राष्ट्रीय चेतना के विशिष्ट ओजस्वी कवि हैं। द्विवेदी जी का जन्म 5 मार्च सन् 1906 ई. को उत्तरप्रदेश के फतेहपुर जनपद के बिंदकी कस्बे में हुआ और 1 मार्च सन् 1988 को उनका देहावसान हुआ। उनके जिन ग्रन्थों में राष्ट्रीय चेतना की कविताएं संग्रहित हैं, उनमें 'भैरवी', 'प्रभाती', 'युगान्तर', 'पूजा गीत', 'चेतना', 'मुक्तिगंधा' आदि प्रमुख हैं।

'भैरवी' काव्य-संग्रह की प्रथम कविता बहुत लोकप्रिय हुई-

'वन्दना के इन स्वरो में एक स्वर मेरा मिला लो।

वदिनी माँ को न भूलो, राग में जब मस्त झूलो॥

अर्चना के रत्नकण में एक कण मेरा मिला लो।

जब हृदय का तार बोले, श्रृंखला के बंद खोलो॥

हों जहाँ बलि शीश अगणित, एक शिर मेरा मिला लो।'

महात्मा गांधी ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के अहिंसात्मक आन्दोलन का सफल और कुशल नेतृत्व किया था। अतः गांधी जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को रेखांकित करना स्वाधीनता संघर्ष का वन्दन एवं अभिनन्दन माना गया। अपनी अनेक कविताओं के माध्यम से पं. सोहनलाल द्विवेदी ने पूज्य बापू के प्रति अपने श्रद्धापूर्ण उद्गार अभिव्यक्त किये हैं। 'भैरवी' में संग्रहित 'युगावतार गांधी' की निम्नलिखित पंक्तियां उदाहरण स्वरूप उल्लेखनीय हैं-

'चल पड़े जिधर दो डग मग में, चल पड़े कोटि पग उसी ओर।

पड़ गई जिधर भी एक दृष्टि, गड़ गये कोटि हग उसी ओर॥

जिसके सिर पर निज धरा हाथ, उसके सिर-रक्षक कोटि हाथ।

जिस पर निज मस्तक झुका दिया, झुक गये उसी पर कोटि माथ॥

हे कोटि चरण, हे कोटि बाहु, हे कोटि रूप, हे कोटिनाम।

तुम एक मूर्ति, प्रतिमूर्ति कोटि, हे कोटि मूर्ति तुझको प्रणाम॥'

अन्य प्रमुख स्वतंत्रता-संग्राम सेनानियों के विषय में भी द्विवेदी जी ने काव्य-

रचना की।

वीर महाराणा प्रताप के संबंध में रचित उनकी ओजस्वी कविता भी 'भैरवी' में संग्रहित है। यह देश-प्रेम और राष्ट्रीयता की भावना से ओत-प्रोत वीर रस की रचना है। विशेष रूप से निम्नलिखित पंक्तियां द्रष्टव्य हैं-

'वैभव से विह्वल महलों को कांटों की कटु झोपड़ियों पर।
मधु से मतवाली बेलायें भूखी बिलखाती घड़ियों पर।।
रानी, कुमार-सी निधियों को मां के आंसू की लड़ियों पर।
तुमने अपने को लुटा दिया आजादी की फुलझड़ियों पर।।'

द्विवेदी जी ने अनेक अभियान गीतों और प्रयाण गीतों का भी सृजन किया। जनता के उद्बोधन में इन प्रयाण गीतों ने महती भूमिका निभाई। कुछ अभियान गीतों की झांकी दृष्टव्य है-

'उठो, बढ़ो आगे, स्वतंत्रता का स्वागत-सम्मान करो।
वीर सिपाही बन करके बलिवेदी पर प्रस्थान करो।।'
'हम मातृभूमि के सैनिक हैं, आजादी के मतवाले हैं।
बलिवेदी पर हंस-हंस करके, निज शीश चढ़ाने वाले हैं।।
सन्तान शूरवीरों की हैं, हम दास नहीं कहलायेंगे।
या तो स्वतंत्र हो जायेंगे, या रण में मर मिट जायेंगे।।
हम अमर शहीदों की टोली में, नाम लिखाने वाले हैं।
हम मातृभूमि के सैनिक हैं, आजादी के मतवाले हैं।।'

X X X

'तैयार रहो मेरे वीरो, फिर टोली सजने वाली है।
तैयार रहो मेरे शूरो, रणभेरी बजने वाली है।।
इस बार बढ़ो समरांगण में, लेकर वह मिटने की ज्वाला।
सागर-तट से आ स्वतंत्रता, पहना दे तुझको जयमाला।।'

X X X

'अशेष रक्त तोल दो, स्वतंत्रता का मोल दो,
कड़ी युगों की खोल दो, डरो नहीं, मरो वहीं, बढ़े चलो, बढ़े चलो।'

पं. सोहनलाल द्विवेदी का काव्य-संग्रह 'प्रभाती' भी राष्ट्रीय चेतना के स्वर मुखरित करने की दृष्टि से विशिष्ट है। इस कृति के संबंध में अपने विचार व्यक्त करते हुए द्विवेदी जी ने जनता के लिए साहित्य-सृजन पर बल दिया है-'शताब्दियों से उपेक्षित, तिरस्कृत एवं बहिष्कृत जनता के लिए हम लिखें और उसकी भाषा में

लिखें जिसे वह समझ सके। आज हमारे राष्ट्र की मांग यही है कि हम जनता के लिए साहित्य-सृजन करें।' अपनी इस विचारधारा की पुष्टि में उन्होंने 'प्रभाती' के अन्तर्गत संग्रहीत 'कवि से' शीर्षक कविता में कवियों से निवेदन किया है-

'ओ नवयुग के कवि! जाग, जाग!

प्राचीन पुरातन कलाकार वैभव-वंदन में हुए लीन,
महलों को तज झोपड़ियों में कब उनके मन की बजी बीन?
यह गुरु कलंक का पंक मेट, तू बन शोषित का अभय गान।
नंगा, भूखा, प्यासा समाज देखता राह तेरी महान!
नवजीवन के रवि! जाग! जाग! ओ नवयुग के कवि! जाग! जाग!

स्वातंत्र्योत्तर भारत में भी उन्होंने अपने दायित्व एवं कवि-धर्म का भलीभांति निर्वाह किया। उन्होंने उत्सव और उल्लास की कविताएं लिखने के साथ ही साथ सम-सामायिक परिस्थितियों और समस्याओं की ओर भी ध्यान आकृष्ट कराया, साथ ही प्रगति के पथ पर अग्रसर होने का शुभ-संदेश भी दिया। उनकी 'चेतना' और 'मुक्तिगंधा' काव्य-कृतियों की ओजस्वी कविताएं इसका प्रमाण हैं। उन्होंने स्वतंत्रता के पुण्य पर्व और मुक्ति के मंगल प्रभात का सजीव चित्रण कर अपने हर्ष और आनन्द का सुन्दर प्रस्तुतिकरण तथा जनता के मानस में राष्ट्रीय-चेतना का संचार किया है। 'चेतना' कविता-संग्रह की कतिपय पंक्तियां उदाहरण स्वरूप उद्धृत हैं-

'गाओ मंगल-गीत रागिनी!

मेरी स्वतंत्रता का नव शिशु, ले रहा जन्म बनकर नव विधु,
जनता जलधि हिलोर ले रहा, ले सुख की लहरें सुहागिनी,
गाओ मंगल-गीत रागिनी !

जय हो इस पावनतम क्षण की जय हो जनता की, जीवन की,
जय हो इस अमृत वेला की, नित नव मधु सौरभ विकसिनी!
गाओ-मंगल-गीत रागिनी!'

X X X

'सजल सफल हुई आज की पुनीत साधना
गूँज रही कीर्ति-कथा बन अतीत यातना,
उठ खड़ी हुई अभीष्ट सिद्धि लिए प्रार्थना,
मूर्त बन रही स्वदेश की स्वतंत्र-भावना।
साज लो श्रृंगार हार, आ रही स्वतंत्रता।
'मुक्ति के मंगल-दिवस की आज पूजन-अर्चना है।

मुक्ति के नूतन दिवस की आज नूतन वन्दना है।।
 धन्य यह दिन, धन्य रजनी, बनी बंधनहीन जननी।
 आज के दिन पर निछावर, युगों की तप-साधना है।
 मुक्ति के नूतन दिवस की, आज नूतन वन्दना है।।’

द्विवेदी जी ने राष्ट्र के नव विकास और समाज सेवा के पथ पर निरन्तर आगे बढ़ते रहने की प्रेरणा प्रदान की है। ‘चेतना’ काव्य-संग्रह की ‘राष्ट्रध्वजा’ शीर्षक कविता की ये पंक्तियां दिशा-निर्देश एवं पथ प्रदर्शन की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं:-

‘हम बढ़ें उधर जिधर राष्ट्र की पुकार हो,
 हम बढ़ें उधर जिधर राष्ट्र का सुधार हो,
 हम बढ़ें उधर जिधर राष्ट्र पर विचार हो,
 हम बढ़ें उधर जिधर राष्ट्र पर प्रहार हो।
 कोटि-कोटि शीश उठ बढ़ें अभेद्य त्राण हो,
 राष्ट्र-ध्वज राष्ट्र का अमर विजय निशान हो।’

‘मुक्तिगंधा’ में भी द्विवेदी जी द्वारा स्वातंत्र्योत्तर-काल में लिखी गई बहुचर्चित कविताओं का संग्रह किया गया है। ‘पुरोवाक्’ में कवि ने लिखा है-‘स्वातंत्र्योत्तर काल में देश जिन आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक गतिविधियों के मोड़ से गुजरा है, जनता पर जो उसकी प्रतिक्रिया हुई है, उसकी मानसिक आशा, निराशा, आकांक्षा, आक्रोश के भाव साकार होकर आपसे साक्षात्कार करना चाहते हैं।’ इन रचनाओं में कवि की व्यक्तिगत नहीं, जनता की भावनाओं की अभिव्यक्ति है, जिसका वह प्रतिनिधि है, जिसका वह प्रवक्ता है, जिसका वह प्रहरी है। ‘मुक्तिगंधा’ की कविताओं में ‘झण्डे फहराने वाले’ शीर्षक कविता अत्यधिक लोकप्रिय हुई, जिसमें समकालीन यथार्थ का चित्रण है-

‘ऐ लाल किले पर झण्डे फहराने वालो!
 सच कहना, कितने साथी साथ तुम्हारे हैं?
 क्या आज खुशी की तरह देश में है सचमुच,
 उठ रहे खुशी के सचमुच ऊंचे नारे हैं?
 कब तक ऐसे झूठे श्रृंगार सजाओगे?
 जिसमें मन खुलकर खिले नहीं,
 मुरझाया हो, ऐसे दुर्दिन में नाचोगे, तुम गाओगे?
 ये झूठी खुशियां और मनाओ आज नहीं,
 दिन आज खुशी का नहीं, दुखी दिलवालों का।

पीछे झण्डा फहराना ऐ झण्डेवालों,
 पहले जवाब दो मेरे चन्द सवालों का।’

प्रगति-पथ पर बढ़ने के लिए उन्होंने इन शब्दों में युवक-युवतियों का आह्वान किया-

‘शुभारम्भ जो किया देश में, नवचेतनता आई है।
 मुरदा प्राणों में फिर से छापी नवीन तरुणाई है।
 स्वतंत्रता की ध्वजा न नीचे झुके, यही ध्रुव ध्यान करो।
 बढ़ो, देश के युवक-युवतियों आज पुण्य प्रस्थान करो।’

राष्ट्रभाषा के प्रति उनका अनन्य अनुराग था। उनका कथन है-

‘यही समय है जागो अपनी भाषा के ओ सम्मानी।
 यही समय है, जागो अपनी संस्कृति के ओ अभिमानी।।
 यही समय है, जागो अपनी जननी के ओ बलिदानी।
 तुमको समय पुकार रहा है आज अमर अभियान में।
 चलो साथियों! चलो साथियों! पावन पुण्य-प्रयाण में।’

‘जागरण गीत’ की ये पंक्तियां भी स्मरणीय रहेंगी-

‘अब न गहरी नींद में तुम सो सकोगे, गीत गाकर, मैं जगाने आ रहा हूँ।
 तुम उठो, धरती उठे, नभ शिर उठाये, तुम चलो गति में, नयी गति झनझनाये।।
 विपथ होकर मैं तुम्हें मुड़ने न दूंगा, प्रगति के पथ पर बढ़ाने आ रहा हूँ।
 अब न गहरी नींद में तुम सो सकोगे, गीत गाकर मैं। जगाने आ रहा हूँ।।’

हिन्दी के इस महान् कवि को कोटि-कोटि नमन है-

‘उस कवि का कोटि-कोटि वन्दन, उस कवि को मेरा नमन।
 जिसने गाये राष्ट्रीय गीत, बतलाया भारत का अतीत।
 स्वातंत्र्य-समर के वीरों को दिखलाया बलि का पथ पुनीत।।
 जिसने कवि-कर्म निभाया था, कर मातृभूमि का अभिनन्दन।
 उस कवि का कोटि-कोटि वन्दन, उस कवि को मेरा कोटि नमन।’

□

बिना निराश हुए पराजय को सह लेना पृथ्वी पर साहस की
 सबसे बड़ी परीक्षा है।

Dr. Suraj Prakash Jayanti

Developing Leadership

- Om Prakash Dubey

Dr. Suraj Prakash, the founder National Secretary General of Bharat Vikas Parishad, was a man with a vision and a mission. Most of all he had the patience and courage to make his vision a reality and to fulfill the mission. Almost every one of us has an obligation to ourselves, our family, society and country. But there are a few people who fulfill all these obligations in a befitting manner. He had a high level of commitment to the organization he founded and led it to great heights in his life time.

A great leader inspires people by his personal example. For him welfare of people is an end in itself rather than just a means to promote himself. He leaves footprints to follow and also leaves many people inspired. Dr. Suraj Prakash was such a leader.

This article by the learned author is dedicated to the sacred memory of Dr. Suraj Prakash Ji.

S.K. Wadhwa
National Secretary General
Bharat Vikas Parishad

Individuals can provide leadership or become followers or bystanders, depending upon the particular role they play at different times. It creates a high level of low self-esteem, with people always looking up to others to show the way and incapable of looking ahead for themselves.

Perhaps we can change all this by demanding and encouraging the practice of leadership, not just for others but for ourselves. **In this endeavour, all of us have an obligation to ourselves, our families, our society and our country,** to demand, encourage and practice leadership, Some might even provide leadership to the world.

To practise leadership, first, one needs practice, and also needs the motivation. In the national context, there are many people who want to do something to revive good values and fair practices.

Second, one must enjoy and get real satisfaction from what one does.

Third, one must be enthusiastic, optimistic and keen to grow and learn, willing to try and try again.

An apt leader always emphasises that these aspirations require one to work with a team, (T-together, e-everyone, a-achieve, m-more) spirit, enthusing others and gaining their understanding, co-operation and acceptance for mutually agreed goals and objectives.

You should always accept the challenges and problems and don't run away from them. Those who avoid facing problems do suffer in life because they get habituated to escape from facing such problems.

(32)

Swami Vivekananda's message for youth period is invaluable and indescribable. "Youth life is the most precious life. Youth is the best time. The way in which you utilise this period will decide the nature of years that lie ahead of you. Your happiness, your success, your honour and your good name, all depend upon the way in which you live now. Remember this, this wonderful period of the first stage of your life is related to you as the soft wet clay in the hands of the potter. Skillfully, the potter gives it the right and correct shapes and forms, which he intends to give. Similarly, you can wisely mould your life, your character, your physical health and strength, and in short, your entire nature in the way in which your mind wants it to be..."

It is like laying the foundation of a building. The strong and continued existence of the building depends certainly upon the foundation.

Let your preparations be wise and correct. Don't allow your youth life to be soft. Keep yourself busy so that you can go in the right direction, path.

The path is made by you and not by your destiny. It is truly said that internal culture of the organisations constitutes a major

determinant of their success and failure. Experts have identified five leadership styles: directive, visionary, participative, pace-setting and affiliative.

Of these, the pace-setting style is associated with low-performing and demotivative organisational climate. The styles which were associated with high performing and energising organisational climate are included, in order of importance, visionary, affiliative and participative.

A distinct quality of great leaders is that they articulate, express and share the organisational missions and goals in simple, easily understood and tangible vision statement. The conceptual purpose of vision and mission is to help the leadership develop clarity, focus and flexibility in determining the nature and scope of their organisations. Thus, if the vision of the leader is shared and is inspiring, it can be a powerful strategic device for motivating people and taking the organisation to great heights.

It is important to note that great visions appeal to both mind and heart and the creative process of crafting a vision frequently draw upon the motivational or intuitive dimension. They create a context which gives meaning, direction and coherence to everything else.

Great leaders are guided by spirituality and can put people into the highest possible realms of human potential. They help to awaken and drive the inner strength of their people to invigorate and inspire immense potential translating into action. They spread seeds of their vision so that they might take root in people and blossom in reality. They walk a line, but frequently changing the line between the inspired world and the material world of action.

A leader's success hinges on his/her ability to mobilise the system in such a way that the distance between current reality and a powerful vision for the future is significantly diminished. The gap between vision and current reality serves as the source for the creative tension that is required for generating a sense of dissatisfaction with the status quo and for a corresponding level of urgency to overcome resistance to change.

(33)

A man of faith, absorbed in faith, his senses controlled, attains knowledge and knowledge attained quickly finds supreme peace. Faith is essential for every achievement. As Samuel Butler points out: "One can do very little with faith, but can do nothing without it. I feel that without keeping alive the flame of faith and burning torch in one's breast, one cannot accomplish anything, cannot advance a single step. It is a fact that any idea when entertained powerfully and pursued sincerely with all faith and devotion, man can achieve stupendous result. "As you think, so you become," is the eternal law of life.

A man of courage is also full of faith. But keep in mind Mahabharata's caution: "Honour one's own faith and do not slander that of others". With a view to reducing tensions and bringing peace, it is necessary to follow one's own faith which is the root of the development of a human being.

Normally, faith is what one believes and not what one knows. Faith springs from happiness and happiness springs from faith. It is not only through merit that one can have faith. For a person who lacks faith, happiness is neither in the inner nor the outer world. In spirituality, faith comes first, then follows knowledge. Working faithfully followed the dictates of his conscience.

Dream wonderful visions of the future, articulating them with great inspiration as well as bringing those visions into being in the world while transforming it in some way. They are effective in articulating their visions because they create specific achievable goals, initiate action and elicit the participation of others.

True leaders are equipped with a high level of commitment to spiritual values. They have a sense of personal integrity and radiate a sense of energy, vitality and will. They are elevated by power and exercise moral leadership. Moreover, they base their leadership on an inspirational positive picture of the future as well as a clear sense of direction in reaching there. They are also marked by respectful and empowering relationship approach and create a shared sense of vision and meaning among others.

Last but not the least, they transform old mental maps or paradigms and evolve strategies which are "outside the box" of

conventional thoughts. They tend to evolve a balance between the left brain (rational) and right brain (intuition) functions. They evolve innovative strategies for accomplishing their vision. **They focus on opportunities rather than problems.**

A true leader shows that leadership is marked by an act of leading from the front, benevolence from within, respectful pluralism, continuous introspection and focus on legacy.

First, the statement of vision is futile if the leader's action and behaviour are inconsistent with this statement. **Action speaks louder than words, what the leader does and values, set the actual tone and create the moral environment of the organisation.**

Personal example is the most potent factor to inspire people to do what they are expected to do. Personal examples in integrity, loyalty, persistence and initiative go a long way in motivating the followers.

Second, true leaders practice benevolence from within. **With them, welfare of people is an end in itself rather than just a means to promote their own welfare.**

Third, they provide a model of respectfully expressing their own viewpoints. This model enables them to respect the diverse religious, spiritual, political and cultural identities of people.

Fourth, true leaders rely on a continuous introspection which assists them in stressing on values and developing a conscience. Introspection is the state of listening to the inner voice for insights which may go beyond personal knowledge and experience.

Lastly, true leaders focus on leaving a footprint and making a difference. They add immense value to the organisation and leave behind many inspired people, who add further value to it. □



Sewa Samarjit

Dr. Sharad Kumar Dicksheet

Saint who restores smiles through his magical fingers

- Atam Dev

Dr. Sharad Kumar Dicksheet is 80 years old NRI based in New York who has been visiting India for the last 42 years to hold free plastic surgery camps for poorer sections of the people and giving them a new face and a new future. Two million babies are born with facial defects in India every year. There is a long line of patients who wait outside the camps overnight for the surgeon whom they revere as God. Performing 50 to 70 operations a day during his hectic six month stay in India every year, he has performed over 2.7 lakhs surgeries.

The most remarkable thing about him is that early in his life in 1978, he was paralyzed in a car accident. Four years later, he lost his voice box to cancer when his larynx and neck muscles were removed. His heart functions only up to 17 per cent of its capacity due to repeated bypass surgeries. He is unable to walk more than a few steps without a wheelchair. Doctors had been telling him ever since 1982, that he was going to die soon. Still he goes on and on astounding his friends and well wishers living his extraordinary life in the shadow of death.

Sharad Kumar was born on 13th December 1930, in Pandharpur (Wardha) in a simple and unassuming family. He had three brothers and three sisters. His father Sitaram Dixit retired as a postmaster. Initially, he wanted to be a singer. At the age of 13 he cleared Sangeet Visharad. He also thought of appearing for the IAS. Finally agreeing to the wishes of his father, he decided to become a doctor.

Upon completing his MBBS from Usmaniya University, Hyderabad in 1956, he was selected for higher studies in US.

He did a four-year course in surgery and later specialized in plastic surgery. While he had an offer of good job in US, he was always keen on returning to India. However, his friends advised him to stay abroad as there was not much scope for a plastic surgeon in India at that time. They suggested that he could live in America and conduct surgery camps here and offered to organize the camps.

Dr. Dicksheet founded the India Project in 1968 to provide plastic surgery to poor patients in his motherland. Since then he has been visiting India every year performing surgeries for cleft lips, squint eyes, facial scars, and other facial deformities. He does not want small children and young men and women of marriageable age to live with the ignominy of a disfigured face. "The operation theatre is my temple," says Dr. Dicksheet, "and I see God in my patients. Each time I come to India for camps it is a pilgrimage."

His right side was paralyzed following an almost fatal car accident in 1978. Initially, he could not move his right hand and so he started using left hand. And it is how he came to gain proficiency in using his both hands for the surgery. He is an incredibly quick plastic surgeon. He is so fast that doctors record his surgeries and play them back in show motion to study them. He has managed to cut the time for surgery unbelievably to fifteen to twenty minutes.

Due to accident he lost his job but he won three cosmetic surgery fellowships in Mexico, New York and Switzerland. Later, he taught at King's County Hospital in Brooklyn. But misfortunes came his way when he lost his voice to cancer which involved four surgeries. He had his first heart attack in 1988. The second heart attack came in 1994 when he was conducting a plastic surgery camp in Ahmedabad and had to be flown back to New York for bypass surgery.

Dr. Dicksheet did not have a steady married life. His first marriage to one of his American students lasted just four years. His second marriage was to one of his patients whom he had met in India. Soon after, he had his first heart attack and the

marriage floundered and resulted in divorce. He now lives alone in Brooklyn, USA. He is a deeply religious person and lives a very simple life. While at home he wears traditional Indian clothing and only one suit to go out.

In the year 1991 he formed a \$1.5 million trust with his life insurance. With the income accruing from its investment, he is partly funding research and balance towards expenses on his visits to India. He believes that the money should help others to carry on his work even after his lifetime, along with five other trusts he has formed in India. There is no administrative overhead for his programme, so every penny is spent helping needy children. All of the physicians involved with the Plastic Surgery Camp, including Dr. Dicksheet, donate their time and pay their own travel and lodging expenses for the trip.

He has won numerous awards and honours. Five-time nominee for the Nobel Peace Prize, he was honoured by the Government of India with the Padma Shri in 2001. He shuns the fanfare. "I don't like the celebrity status. These awards mean nothing to me unless they are accompanied with a significant amount of money to help my cause."

He believes that his troubles are nothing when compared to the problems of children who come in for surgeries and the stigma they face in life because of their disfigurement. Says Dr. Dicksheet: "Gandhiji's message was that real service to God is service to humanity. This is real religion for me. We have to recognise the godly spirit in others."

"Whatever time has left before I die, I want to utilize it for the poor, disabled children. This is no service. It's what I do best," says Dr. Dicksheet. □

How wonderful it is that nobody need wait a single moment before starting to improve the world.

— Anne Frank

Unlocking Your Possibilities

- T.G.L. Iyer

During the French Revolution when the throne of France was shaking and tottering, a young unknown man suddenly appeared on the scene.

He was a Corsican, who for many years was walking in the streets in Paris, a poor, dejected student but did not consider himself a failure.

He stepped out of the shadows and seized the Nation's helm and brought order out of chaos. He was Napoleon Bonaparte, a mastermind and genius, who rose from the rank of a corporal to the level of Emperor of France.

General Grant of America, who was an ordinary routine person, graduated 21st in a class of 39 students. At 32, he was forced to resign from the Mexican Army. He tried his hand in real estate business, in a tannery and in a departmental store, but ended in failure. No one suspected the giant sleeping within him. The civil war brought him to the forefront.

Abraham Lincoln, the President, picked him up to lead the army against the southerners. In 4 years flat, he became famous for his acumen, strategy and mastermind.

When, someone complained to Abraham Lincoln that he was a 'drunkard', Lincoln retorted, "Find out what brand of whisky he drinks and send a case to him on my behalf."

Still another example is the career of General Sir William R. Robertson who at the age of 19 went to London, enlisted as a Private in the 9th lancers. He had received only rudimentary education at an elementary school, but having resolved to make the most of himself, he started investing in books and educating himself. After 10 years as an ordinary soldier, he passed a stiff examination and was commissioned as an officer in the Third Dragoon Guards.

Due to persistence and commitment, every bit of his ability locked up within him was released in abundance.

In South Africa, he earned the praise of Lord Roberts and Earl Kitchener for fighting battles and winning them. His colleagues said, "Everyone must admire him. He won his way without influence against odds making the most of his natural gifts."

Most of us look outside and not inside for our 'Motor Force'. The power to obtain anything we need and whatever we want, is within us awaiting release if only it could be tapped.

(36)

Mahatma Gandhi, an ordinary Barrister went to South Africa and when he was thrown out of a train being 'brown', opened the flood gates of his talents, came to India, organized the freedom movement, ran a school of leaders and won freedom for his people.

Nelson Mandela of South Africa who fought Apartheid, was in prison for 26 years in Robben Island, became the President of South Africa after his release, and retired gracefully handing over power to his successor.

People with master minds turn barriers into bridges. Clarence Jordan, an ordinary priest of America was educating the semi-illiterate farmers. When he read from the Bible, they could not absorb the message. The Bible was in King James English.

So, he wrote a complete translation of the Bible into their own language, which they could understand. He planted stories and narratives, which they could understand and appreciate. His translation of the Bibles was published in book form and was sold as hot cakes across the nation.

A father noticed his young son getting discouraged when his plans and projects did not work. One evening, the father handed over to the youngster a board and a pen-knife and asked him to scratch a line cross the middle of the board.

This ritual was followed every day and his son would draw the knife along, deepening the groove. After several days the knife cut the board into two. The father said to the boy "Remember, son, success or failure in life does not depend so much on how hard you try, but whether or not you go on trying till you achieve what you want".

You should, sit down and put your 'idea generator' to work on a sheet of paper, list out ideas by which you can become stronger and more successful in your chosen field.

Once you have your list ready, put them to work and you will get amazing results as most of the ideas would work and few will fail. An anonymous saying is: "The brain has muscles for thinking as the legs have muscles for walking."

Without frequent exercises these muscles will deteriorate. Well, it is not easy to spot one's own talents lying buried deep inside. There are negative people around us who say, "It can't be done" and they have some convincing crutches to help you take the easy route out of problems and challenges.

Mental crutches are dangerous. Throw them away and have a parachute to soar high in life!



Thus Spake Vivekananda

On Mind Power

All the great prophets, saints, and seers of the world—what did they do? In one span of life, they lived the whole life of humanity, traversed the whole length of time that it takes ordinary humanity to come to perfection. In one life, they perfect themselves; they have no thought for anything else, never live a moment for any other idea, and thus the way is shortened for them. This is what is meant by concentration, intensifying the power of assimilation, thus shortening the time.

Is Radha Real?

- R. Subramaniam

The Supreme Reality, Sat-Chit-Ananda, the ocean of beauty Krishna is no different from Ramachandramurti and likewise Radha, Rukmani and Sita have no difference among them. The so-called Hladini Sakti comprising of the tendency to delight and rejoicing is inherent in Him. Krishna in the Brahma Vaivarta Purana says: "O Radha, Just in the way you are Radha in Goloka and Gokulam, you are Mahalakshmi, Sarasvati in Vaikuntha. You are the consort Lakshmi of Vishnu of the milky ocean. You are Rukmini, the Mahalakshmi of Dvaraka. You are Draupadi and you are Sita in Mithila. You as the form of consort of Rama came to be abducted by Ravana".

(37)

The body of Bhagvan is the appearance of Hladini Sakti, he embodiment of bliss. Mainly in order to enjoy the delight of the newly carved love and affection, is the embodiment of the bliss as the medium of love, Radha; she is all love-divine (Prema) and Krishna is bliss (Ananda). These two love and bliss can never be separated so too Radha and Krishna where there is love, there is bliss; so there won't be Radha without Krishna or Krishna without Radha.

Radha and Krishna are mutually captivating towards each other and more so the mutual vital link between the two. They possess divine bodies comprised of substance of the essence of love and affection. So much so Radha is ever extending delight to Krishna. Myriads of Saktis following the Hladini Sakti are ever waiting upon Krishna in the form of Sakti; "Sanjari, Sahachari and Dhooti" and serve Krishna constantly. Servile duty to Krishna is the only job with them. They are all called the Gopis. To the Paramatman, the self-delighting self-satisfying, self-sustaining and self-perpetuating, can there be a craving or tendency for delight?

Being, becoming and love are ever innate to Paramatman. The tendency to patronise love and affection is already there in love and the very concept of love is inherent in the patronage of love. Those

who have taken asylum in love are the Gopis. Shri Krishna is the conceptual embodiment of love. The wonderful way of divine being and becoming of the Gopis nourishes the divine tendency of Para Brahman to enjoy. The supreme stature of love creates or induces desire in that fully surcharged love, insatiableness in that ever-satisfied action in that inactive self and delight in the already delightful. Such divine delight and divine love Radha and Krishna are one and the same. Bhagavan says in the Brahma Vaivarta Purana: "I am what you are, there is not even a tinge of difference, just like the white in the milk, the luminsoty in the flame, the magnetic power of the earth; I am ever inherent in you."

In the Bhagavata Purana, Radha is nowhere mentioned. Radha, the essence of the sentiment of love projects the essence of the sentiment of delight-where there is Krishna there is Radha. There is verse in the Rasa Panchadhyayee. "Bhagavan the Ramakaanta had sports with Vraja Sundaris, like children who often play with their reflection. Thus the sportive Bhagavan is bound to selfless love. Induced by delight, he played with Gopis by means of His form of bliss. So the sports between the Gopis, the form of love and Krishna the form of delightful enjoyment is devoid of any fringe of lust".

Who is Radha? Is she real or imaginary? What are her form, characteristics and sports. She is multilateral in form, qualities and characteristics. Sri Krishna is Satchitananda Vighraha, sporting in varous forms, Sat is Chandni, Chit is Siddhi, Ananda is Hladini. Hladini is Radha, Chandini is Brindavan, Siddhi is Yogamaya.

Radha has created so many Gopimaids to participate in different sports. Bhagavan Krishna is 'Rasa' – Raso Vai Sah" – The pervading expansion of Rasas is Leela. The one eternal thing became dual in order to extend the sportive delight and subsequent enjoyment Radha is full of energy and so is Krishna. Radha energy and so is Krishna. Radha is combustible power, Krishna is actual Agni. Radha is prevading light while Krishna is Bhavana Bhaskara. Radha is moonlight when Krishna is full moon. By means of varied waves of pleasure and delight, she makes Krishna lose himself in bliss.

(38)

Radha is not a figment of the imagination of the poet. She has no particular learning or affinity. She is ever interested in making Shyam Sunder happy. Before Krishna, she considered herself devoid of good qualities though full to the brim of divine Love, she thought that she was devoid of love, though a treasure trove of beauty. She considered herself ugly, though a repository of purity and gentleness. She also considered that she was not competent to become the consort of Krishna.

When even Krishna submerged in the graceful form and attributes of Radha He begins to praise her; Radha will lose herself in a recoil in bashfulness. The very aim and objective of life is ever to make the life of Krishna delightful. She will adorn herself with flowers, she will wear fragrant garlands, she will use all the appurtenances of beauty, she used fragrant perfumes, she listened to sweet music, she did all these not for her happiness but for the Supreme delight of Krishna.

The Sringara Rasa as interpreted by Radha vis-a-vis the Sringara as understood by the world is diametrically contradictory excepting perhaps in the name. They are opposed in their philosophic content as also their individual characteristics. The Sringara of the terrestrial type is the abode of lust and its efflorescence. The Nayaki Nayaka Srinagara is ego centred, lustful and desire oriented. So the temporal love is sunshine.

Lust is set to satisfy the sense pleasure, whereas Prema (Spiritual Love) is set to experience the Supremely divine love of bliss. With lust we fall ten fathom depth never to rise up, and with prema (spiritual love) we reach the immense heights of rare divine bliss.

Radha, the Supreme manifestation of "Mahabhava" of Gopas, achieving the rare attributes of spiritual love after having transcended desire, separation, friendship, honour and love is the solitary example of having dissociated from the Sringara of the temporal world.

□

Tradition Vs Modernisation

- Ravindra Kumar
Formen Vice Chancellor of Merut University

Many individuals and organisations all over the world have talked of equal status of women in society since a long time. While going through history, we find that whether it had been the Vedic period in ancient India or classical period in Rome and Greece, women enjoyed respectful status in societies.

Historian Herodotus, spoke of several goddesses that were assigned for special rituals throughout the ancient West.

Similarly, in Vedic scriptures, there are accounts of certain ceremonies that could only take place in the presence of a wife. The legendary Ashwamedha Yajna is one of them. This proves that equality for women is not a new one for society.

Historian Herodotus, spoke of several goddesses that were assigned for special certain ceremonies that could only take place in the presence of a wife. The legendary Ashwamedha Yajna is one of them. This proves that equality for women is not a new one for society.

It is true that during foreign invasions on India, women were confined to their houses in order to protect them from atrocities and, as we all know, India had been under foreign rule for about a thousand years. So, this confinement had been one of the major reasons that conservation became an essential part of society.

Now, after independence and with the growth of democracy, women have become entitled to enjoy a similar position as men, and many of them are really enjoying that. But with this development, there has also started a phase of social crisis. Though this crisis has not affected the major part of society, it has started affecting family, the smallest unit of society.

Due to rise in standard of living, there has originated a sort of competition in society, resulting in the need of more than one earning member in the family.

Today, in India, there is a general trend of nuclear family, which means both husband and wife work to maintain good standard of living, and to afford good education for their children.

Simultaneously, with the increasing number of working girls, family life is getting affected. When it comes to the standard of working atmosphere for women, our society has not been up to the mark where professionalism is required.

In the back of mind of a male employer, a woman employee is considered to be only a woman and a means to satisfy his manly desire whether through an intimate talk or through and intimate relationship.

The study of human psychology clearly indicates that everyone wishes to be admired. In office atmosphere, this false praising and admirations are used as a principle tool for seduction.

This world have not mattered if our minds would have also matured and accepted the changing scenario. But women come home and seek the same appreciation from their husbands and when they do not get it, they look for another option.

This silent unquenched thirst causes differences to rise between family ties and thus the unit of family starts breaking with the daily sessions of nagging and criticism.

Another thing affecting society is the establishment of discotheques, nightclubs and amusement centres, not only in major cities, but also in towns throughout the country. Girls and boys are attracted to such places. Such places also see the rising of playbody and playgirls who live their life in full. They claim that life is short, so why not enjoy it completely.

Plato, a renowned philosopher of ancient Greece, in his work 'Symposium', has also referred to a difference between various kinds of love that exist. He says:

(39)

"There are also times when elders look grave and guard their young relations, and personal remarks are made. The truth is that some of these loves are disgraceful and others honourable. The vulgar love of body that takes wing and flies away, when the bloom of youth is over, is disgraceful, and so is the interested love of power of wealth, but the love of the noble mind is lasting."

Thus the spoiled people of society are not aware that in the rush for materialisation, they are losing what our saints have termed as, 'The Power and Purity of Soul'.

Some may argue that it is westernisation of society that has caused it. In the West people do not consider premarital relations as something bad.

While here in India, there are a lesser number of so called playboys, but the girls they exploit outnumber a great deal. This results in disharmony in family life.

These so-called playboys are never ready to marry a playgirl. They seek a virgin for marriage because they know that virginity is a great virtue. And what remains to such girls who were exploited by false praises, if they get married, the past haunts them day and night; and if their husbands are sincere, the family ties again get ruptured. This either leads to the impertinency of wife, if husband is able to take that, or to divorce.

This is the main reason for the increase in the number of divorce cases considerably during the last one decade, and it is still rising. But divorce is not a solution to the problem.

Both men and women suffer a lot during such an emotional crisis. Some women do not get to the root of the problem and do not understand that till recently the Indian society did not like women to work in the company of other men.

Women are always praised for their loyalty, devotion and love. They are also praised for their shyness and homemaking qualities and this should always be remembered by them.

It was Manusmriti which referred to marriage as an institution for the creation of a healthy, disciplined and pious generation.

Socrates, the great Greek philosopher, speaks: For he who loves a beautiful body, should be forced to love beautiful mind, and the beauty of laws and institutions, until he perceives that all beauty is of one kindred; and from institutions he should go on to the sciences, until at last the vision is revealed to him of a single science of universal beauty; and then he will behold the everlasting nature which is the cause of all, and will be near the end.

In the contemplation of that supreme being of love he will be purified of earthly leaven, and will behold beauty, not with the bodily eye, but with the eye of the mind, and will bring forth true creations of virtue and wisdom, and be the friends of God and heir of immortality.

There is much curiosity in the modern generation about Kamasutra by Vatsyayana. So, it would not be out of context if something from it is quoted here. Vatsyayana provides an account of some qualities to prove a woman good or bad. In this regard he mentions:

"A virtuous woman, who has affection for her husband, should take upon herself the whole care of his family. She should keep the whole house well cleaned, and arrange flowers of various kinds in different parts of it, and make the floor smooth and polished so as to give the whole a neat and becoming appearance. She should place ready all the materials required for the morning, noon and evening prayers".

Towards the parents, relatives, friends, sisters of her husband she should behave as they deserve. As regards meals she should always consider what her husband likes and dislikes and what things are good for him, and what are injurious to him. When she hears the sounds of his footsteps coming home, she should at once get up and be ready. She should be possessed of intelligence, good disposition, and good manners and to be grateful; to consider well the further before doing anything; to possess activity, to be of consistent behaviour, and to have a knowledge of the proper times and places for doing things; to speak always without meanness, loud laughter, malignity, anger, avarice, dullness."

Regarding men, he says:

"Men with a good knowledge of the world, and doing the proper thing at the proper times, poets, energetic, skilled in various arts, far-seeing into the future, possessed of great minds, full of perseverance, of a firm devotion, free from anger, liberal, affectionate to their parents, free from all disease, possessed of a perfect body, strong, and not addicted to drinking, showing pity towards poor, possessed of independent means of livelihood and free of envy."

There is a growing thinking among the new generation, making them feel that if they live the life to its fullest, they would be able to experience eternal happiness. But the truth is exactly opposite. All saints and prophets have emphasised on the cultivation of morality and righteousness for the purity of mind. No one can achieve complete calmness and detachment as long as the unwholesome feeling and unconscious emotional conflicts are tackled with success.

Thus the process is reciprocal. If we quieten our minds, we get better insight by controlling undesirable feelings. This would also help achieve calmness, detachment and objectivity.

It is the time for young men and women to think wisely on the situation currently affecting our society.

We have to look at love as something beautiful, love also the good and seek the everlasting good.

For the creative soul creates not only good children, but also the ones with wisdom and virtue. We all know that children are well-earned blessings of a family. This is also the message of our great culture and civilisation.

We should remember that for over five thousand years our culture and civilization have stood upright against all odds and now it is endangered not from an external enemy but from within. Let us not follow the example of other young and materialistic cultures and civilizations, but set an example worthy of praise from the world over, as in the past.



How the West Looks at Gita

- Pratibha Devi

"I find solace in the Bhagavad Gita", wrote Mahatma Gandhi, "that I miss even in the Sermon on the Mount. When disappointment stares me in the face and all alone I see not one ray of light, I go back to the Bhagavad Gita. I find a verse here and a verse there, and I immediately begin to smile in the midst of overwhelming tragedies".

One of the most cherished and widely read sacred scriptures, the Bhagavad Gita has inspired and inspired many political thinkers, philosophers, freedom fighters, writers around the world. The beauty of the text lies in its universality. Its universal appeal beyond the narrow Scriptures of religion, caste, race or nationality makes it an eternal philosophy.

(41)

The first English translation of the Bhagavad Gita was by Sir Charles Wilkins with an introduction by Sir Warren Hastings. Its intensive influence can be seen in its translation in numerous languages across the world. Aldous Huxley was so deeply mesmerised by the text that he called the Gita as one of the "clearest and most comprehensive summaries of Perennial Philosophy ever to have been made." Huxley believes that the enduring values depicted in the Gita is not only relevant for Indians, but for all mankind. He thus remarks, "The Bhagavad Gita is perhaps the most systematic spiritual statement of the Perennial Philosophy."

The immense influence of the Gita not only as a sacred religious text but as a philosophical guide makes it one of the most loved books. Perhaps that is the reason why, unlike the Bible or the Quran, the Bhagavad Gita does not depend on any governmental or organisational patronisation for its propagation.

Will Durant described the Bhagavad Gita as the "loftiest philosophical poem in the world's literature." We often tend to

overlook the literary value of the Gita by emphasising on the philosophical aspects. One of the best English versions of the Gita which has endeared itself to more than one generation of readers was made by Sir Edwin Arnold as the Song Celestial and published in 1885. Arnold's translation is equally poetic and meaningful as that of the original.

In one of its most beautiful passages, Arnold renders the fundamental doctrine of the Hindu religious belief thus:

Never the spirit was born

The spirit shall cease to be never

Never was time it was not

End and beginning are dreams.

Krishna says to Arjuna, who in his honest and honourable bewilderment, confesses that he cannot slay his own kinsmen and friends even if they are guilty, that the human soul is indestructible. It is neither born nor does it ever die. Like a worn-out garment it changes bodies. He goes on to explain that the end of birth is death, and the end of death is a new birth.

All these things are ordained and the job of man is to do his duty. He should try to do his duty faithfully and well, just because it is his duty and because of what he hopes to get out of it.

Krishna talked of anasakta karma or niskama karma, i.e., action without attachment. Human beings should perform their duties without really getting affected by the consequences. Actions thus performed would free us from the karmic circuit and lead us to salvation. This could also mean that a salvation achieved through this way does not require an individual to renounce his worldly duties and retire to a forest.

Such a method is called karma yoga as it is characterised by normal participation in one's everyday activities. What one is required to do is to detach oneself not from the acts but from their results.

The theory of karma is an important contribution to the world. This interpretation permits man to detach himself from the world while yet continuing to live and act in it. This theory influenced different people in different ways. The Gita has been responsible in inspiring and modulating some significant intellectual movement in America in the 19th century.

Some of the pioneers of the movement like Emerson and Thoreau were thoroughly enchanted by the philosophy of Gita. It won their intellectual appreciation. While for Emerson it remained on the level of intellect, Thoreau translated it into daily action. The impact of Bhagavad Gita changed Thoreau's thought and vision and transformed his life into a typically Indian way. His life was in many ways un-American and closer to that of a detached Hindu yogi.

(42)

Thoreau saw in the doctrine of karma yoga, something highly instructive. The idea appealed to him because he was struggling to become a contemplative saint without avoiding action. He came closely to follow the Indian doctrines of liberation and translated them into action in his own life in the same way the Indian yogis did. His whole life can be seen as an experiment in the line of anasakta karma yoga.

We can try not to be a prisoner of our necessity. If we never have any personal ambition we are never affected by the conflict of success and failure. And once we go beyond the dualities of life we can surely discover what life is and how to live it. It is not metaphysical theorizing, but the practical motive of indicating how salvation can be attained by disciplined activity or anasakta karma.



Making India Innovative: Lanuching an Innovation Movement

By

Vigyan Ratna Lakshman Prasad

Lakshman Prasad, 81, is a distinguished innovator, decorated for his path breaking innovations. He has made more than 20 innovations out of which 12 have been successfully commercialized. In recognition of his innovative work in key areas of national importance, Prasad has been honoured with 10 Innovation Awards including 7 national awards and 3 state awards.

He wrote a lengthy article on making India innovative. The first part of the article is reproduced below. The last part will follow in the next issue of Gyan Prabha-Editor

Technological changes are taking place rapidly throughout the world. The latest slogan is "**Innovate or Perish**". The future belongs to those countries which can successfully compete in the race of technological innovation. Technological innovations can not only tackle problem faced by a country but can make a far more important contribution to the economic growth. For India to have a dignified existence in the comity of free nations, there is no alternative to inventions and innovations.

Decade of Innovation-A Declaration

Realizing the role and importance of innovations in meeting stiff global competition and improving life of rural population by removing poverty, illiteracy and disease. **Hon'ble Prime Minister of India Dr. Manmohan Singh** declared last year that the present Decade - 2010-2020 would be the "**Decade of Innovation**". Similarly, **Her Excellency Smt. Pratibha Devi Singh Patil, President of India** also declared in the Parliament that the Decade of 2010-2020 will be observed as "**Decade of Innovation**". It appears that both Hon'ble Prime Minister and the President of India have resolved to

make India an innovative society thereby making India a developed nation by 2020.

Knowledge-Centered Innovation

In order to make India innovative, the country, in this context is making pressing demands on science and technology. We are looking for new knowledge and new products in the new century. We are especially looking for knowledge and products that will further reduce human misery, remove hunger and want and improve the living conditions of the people at large. While doing so we have to protect environment.

Co-operation among the Scientists and Technologists

Achievement of the above objectives calls for greater cooperation among the scientists and technologists in formulating policies, as well as their implementation directed towards innovations of new products and processes for the well being of the people of the country. Further, it has become necessary to establish bridges between the traditional approach of research and global demand for innovation. This is where creation of knowledge-based innovation becomes important.

Conversion of Knowledge into Wealth and Social good

Knowledge without innovation is of no practical value. It is through the process of innovation alone that knowledge is converted into wealth and social good, and this process takes place from farm to firm. When one looks at India today one feels that centuries of subjugation has perhaps undermined our capacity for innovation and creativity. We cannot anymore allow the 'I' in India to stand for imitation and inhibition, it must stand for innovation.

Forward and Backward Linkages

The processes of innovation have both forward and backward linkages. The forward linkages will involve technology innovation and production chain, with the consequent process of diffusion representing a further forward linkage. For India, equally important is the backward linkages which pertain to literacy, science education, public awareness, the mass media and the use of innovation in science itself to further these.

(43)

Innovation and Innovator

An innovation is an improvement over any existing product/device/article/process. An innovation occurs when someone puts knowledge and skill together to make use of discoveries.

Innovators are those who do not know that it cannot be done. Innovators are those who see what everyone else sees but think of what no one else thinks. Innovators refuse status quo, they convert inspirations into solutions and ideas into products. Building such innovators will require an all pervasive attitudinal change towards life and work a shift from a culture of drift to a culture of dynamism, from a culture of idle prattle to a culture of thought and work, from diffidence to confidence, from despair to hope. Revival of India's creativity and the innovative spirit needs to be made into a national movement today in the same spirit and on the same scale as marked the country's freedom struggle.

Instrument for Innovation Promotion

The creative ideas are very very important for development of inventions and innovations. No invention/innovation can be conceived without creative ideas. Therefore, creative ideas assume far greater importance in development of scientific and technological knowledge and products. Even they have also played a very significant role in development of human society. Human civilization and culture developed over a period of time was through creative ideas only. In short, creative ideas are the driving force for innovations/inventions. Therefore, the suggestion was made to establish a "**Bank of Creative Ideas : An Instrument for Innovation Promotion**" by the author while addressing the distinguished faculty of IIM, Ahmedabad, a few years back. Business houses in India and abroad have already started collecting and creating creative ideas for developing new products and processes by offering cash awards through advertisements in newspapers. Even some social organizations have also solicited new ideas for developing programs for social good, social change etc. through newspapers.

In short, creative ideas are much more powerful than several atom bombs; much more superior to many super computers and can travel much faster than the speed of many supersonic aircrafts.

Enabling Environment for Innovations

Innovation cannot be made overnight nor innovative culture can be inculcated amongst the people in a short time. Long term planning is imperative to foster creativity and the spirit of innovation amongst various sections of society. Therefore, a proper environment conducive to promotion of innovation has to be created / developed through out the country particularly in each and every educational institutions from primary stage to University level thereby involving students in innovative activities and endeavours.

Inclusion of Innovation Subject in Curriculum

Innovation has crossed the realm of art and is now considered a skill that can be developed by anyone. Therefore, the subject of innovation is included in curriculum of schools from primary level to secondary stage.

(44)

In **Russia**, even school children are being formally taught the skills of innovative problem solving. Therefore, a beginning should also made in India to introduce the subject of innovation formally in our schools throughout the country. Over a period of time we may have an army of innovators at different levels to solve country's economic and social problems and also help to meet the challenge of stiff competition coming particularly from **China, Korea, Taiwan, Japan** etc.

At the school level, in my opinion, education must nurture the child's **creativity and curiosity** about the environment and surroundings. Emphasis should be on exploration, innovativeness and creativity through activities. At the secondary stage, emphasis should be on experiments, problem solving and team work etc.

Another important suggestion is that a paper on "**Innovation**" is introduced at under graduate and graduate level and a comprehensive course on "**Innovation**" may also introduced at post-graduate level so that we may develop a large no. of qualified young innovators to make a career in innovation field in different disciplines. It is relevant to mention that some universities in **U.K.** and **Western Countries** have already started post-graduate course on "**Innovation Management**". The same should also be introduced in **IIMs** and **IITs** etc. besides there is suggestion of opening a new "**Institutes of Innovation Management**".

Ignite Innovative Fire

India is nation of more than a billion people. A nation's progress depends upon how its people think. It is thoughts which are transformed into actions. Let the young minds blossom-full of creative ideas, the creative ideas make innovations, innovations result in prosperity.

With advent of new millennium, time has come to ignite innovative fire amongst all sections of community for realisation of goals we have set up to meet global challenges and competition successfully, Dr. A.P.J. Abdul Kalam has always emphasized that ignited minds are the most powerful resource on the earth, above the earth and below the earth. This mighty force can transform developing India into developed nation.

(To be concluded)

Thoughts of Buddha

Yesterday, Today and Tommrow

What we are today comes from our thoughts of yesterday, and our present thoughts build our life of tommrow : our life is the creation of our mind.

Reciprocity

The pupil asked the master, "Is there a single word that can guide ones entire life?" The master said, "Should it not be reciprocity? What you don't wish for yourself, don't do for others."

The "Gravity" of Success

- Azim Premji

Chairman of WIPRO

Excerpt's from the address given at the conference of NASSCOM

What really is innovation? How is it different from creativity? The simplest definition I have come across is that **"creativity is about thinking new things, whereas innovation is about doing new things."** Innovation comes from applying creativity or applying thought. It is about action versus just ideas. to me, innovation applies to innovations in business model as well as quality, productivity, service, financial discipline, employee attitudes and renewal. Finally, innovation is not just about incremental improvements in the course of daily operations or a one-off new brilliant idea. Innovation is a culture that needs to be created consciously and pursued assiduously by the organisation.

(45)

Culture of innovation

First, we need to appreciate that all success creates its own "gravity". It is easy to believe that what has succeeded so far must continue to succeed in the future as well. This builds up a kind of dominant logic that is comfortable to the thinking of the management. Any new idea will be pulled to the ground with the force of gravity. The first step therefore is to confront the gravity. If we can inspire everyone around us with a vision that is truly exciting, the feeling of the complacency tends to come off. It will also create new energy to dig out and give life to many ideas lying buried beneath layers of bureaucracy.

Second, we need to constantly look for new ideas from everyone and everywhere. The customer is a good place to begin. We gather enormous data from the customer on satisfaction. We also need to put in place a process for listening to new ideas from the customer.

Third, we need to actively bring in people who are not "clones" of people already inside the organisation. We must have the courage to hire people who make us uncomfortable, including some we actually dislike. Hiring them is only part of the problem.

But I have found that the real issue begins after that. If they are not protected, the rest of the system will push them out very quickly so that all can return to their familiar way of thinking and acting. But such people can be invaluable in providing a completely different outlook.

Fourth, we as top management our commitment to innovation. People hear what other say but act on what others do. The commitment must be intrinsic and to beyond just providing budgets and physical assets. We need to constantly reinforce the feel that we have to keep thinking differently if we have to survive and grow.

Fifth, I have realised that the day of the isolated innovation is over. We need innovators who can enroll the support of their colleagues and evolve their ideas over time. Support is absolutely necessary to take the brilliant idea off the ground.

Sixth, we must actually encourage people to fight constructively over ideas once they have reached a certain stage. Fighting too early will kill the idea. But in the intermediate stage, this helps us to look at the ideas from various angles and bring out nuances that could be critical while implementing them.

Seventh, we must allow for creative failure when it comes to generating ideas. No one likes failure. But unfortunately, all evidence suggests that it is impossible to generate a few good ideas without a lot of bad ideas. As the Physics Nobel Prize winner Feynman said, "I try to fail as fast as I can." That is the best way to move to a new idea. Failure should be forgiven and forgotten as long as the lessons are remembered.

Finally, we must have a clear process to communicate the directions and areas where new ideas are sought so that the employees can be realistic in their assessment of opportunities.

Centre of Excellence

At Wipro, we institutionalised the spirit of innovation through our innovation initiatives six years ago and are now deriving business value from these investments. The Integration Factory Model, a delivery management model that enables organisations manage globally distributed functions more efficiently, was implemented at Glaxo Smith Kline to help them accelerate the pace of offshoring and drive standards. As a concrete example of business benefits, in the last quarter alone, 29 of Wipro's new engagements came as a direct or indirect results came as a direct or indirect result of innovations. Wipro has now been able to create a successful track-record of innovating service delivery of innovating service delivery models-being among the first to remote deliver R&D, Infrastructure outsourcing, Testing and BOP.

(46)

At the national level, a lot more can be done to encourage a climate of innovation. We need to encourage more incubation of ideas, provide the right technical and business expertise to make innovation a national initiative. Are we Indians creative? Going by our rich cultural heritage, we have no doubt some of the greatest art and literature. We need to bring the same spirit into our economic and business arena in an organised and concerted manner.

In the final analysis, innovation is not about processes, techniques or for that matter just creativity. It is about a spirit that engages the body, mind and heart. It is about a new excitement that encourages one to think what no one else has thought and the courage to do things no one else has done. It is about creating a better tomorrow. Innovation, thus, is a unique ingredient that can make our lives and professions worthwhile.



इस अंक में.....

अपनी बात		1
Editor's Reflections		3
Holy Wisdom		6
Tribal Development in India	Dr. Tarun Bikash Sukai	7
Problems of Tribal Education in India	Dr. Sanjay Kr. Pradhan	12
Education of tribal children	Vinoba Gautam	17
लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक का ज्ञानयज्ञ : गीता रहस्य	डॉ. विद्या केशव चिटको	19
भारतीय अवतारवाद का वैज्ञानिक आधार	सुरेश चंद्र	23
अवतार और उनकी कला	पं. माधवाचार्य	27
मानव-उत्कर्ष के कवि रवींद्रनाथ टैगोर	चक्रधर नलिन	31
वास्तविक क्रांति	महाप्रज्ञ	35
भारतीय संस्कृति के सनातन सन्देश	डॉ. रामकरण शर्मा	37
भगवा भारत का अन्तर्मन है	हृदयनारायण दीक्षित	41
विज्ञान भी मानता है अब ध्यान के महत्त्व को		43
पत्रिकाओं में लेख लिखने की कला	एस. सी. गोयल	47
समाचार चैनलों से विलुप्त होते समाचार	राजेन्द्र कुमार	51

(47)

'शब्द कैसे कैसे'	किशोर अग्रवाल	55
राष्ट्रीय चेतना के कवि पं. सोहन लाल द्विवेदी	विनोदचन्द्र पाण्डेय 'विनोद'	58
Developing Leadership	Om Prakash Dubey	63
Dr. Sharad Kumar Dicksheet	Atam Dev	68
Unlocking Your Possibilities	T.G.L.Iyer	71
Is Radha Real ?	R. Subramaniam	74
Tradition Vs Modernisation	Ravindra Kumar	77
How the West Looks at Gita	Pratibha Devi	82
Making India Innovative : Lanuching an Innovation Movement	Vigyan Ratna Lakshman Prasad	85
The "Gravity" of Success	Azim Premji	90

